सिद्ध योग

संस्थापक, सम्पादक तथा संरक्षक

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज

वर्ष ३

अंक ४

जुलाई १९६०

वार्षिक मूल्य १० रुपया

इस अंक का मूल्य १ रु०

पीतम लैवे आवेगो री !

[महाकवि शङ्कर]

साँची मान सहेली परसों, पीतम लैवे आवेगो री !
मात-पिता भाई-भौजाई, सबसों राख सनेह-सगाई,
दो दिन हिल-मिल काट यहाँ से—फिर को तोहि पठावेगो री !
अब को छेता नाहिं टरेगो, जानों पिय के संग परेगो,
हम सब को तेरे बिछुरन को—दारुण शोक सतावेगो री !
चलने की तैयारी करले, तोशा बाँधि गैल को धरले,
हालाहाल विदा की बिरियाँ—को पकवान बनावेगो री !
पुर-बाहर लों पीहर वारे, रोवत संग चलेंगे सारे,
'शङ्कर' आगे-आगे तेरो—डोला मचकत आवेगो री !

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन, सवाँई ऐत्मादपुर आगरा

प्रकाशक :—
श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन
सवाई एत्मादपुर
आगरा

इस अङ्क में—

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. मैं परमात्मा को जानता हूँ	....	१
२. समाधि की सिद्धियें	(हमारा विशेष लेख) योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	२
३. स्वर विज्ञान द्वारा रोग नाश	श्री ओमप्रकाश पालीवाल	६
४. श्री मत्स्येन्द्रनाथ की योग-दीक्षा	श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र द्वारा	१४
५. निद्राजित (निद्रा पर विजय)	श्री विष्णुदत्त शर्मा, एम. ए., सी. एम. टी-एस. जापान रिसर्च स्कॉलर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय	१९
६. आत्मा की खोज	श्री रामचरन सनाढ्य बी. ए.	२५
७. पूर्णयोग	श्रीमती प्रेमवती शर्मा, एम. ए. बी. एड. (दतिया)	३०
८. साधना	आयुर्वेदाचार्य श्री पं० रामस्वरूप शास्त्री प्रधानाचार्य साधना विद्यापीठ सफीदों-हरियाणा	३४
९. सचित्र योगासन और उनके लाभ	द्वारा योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा-सवाई	३७
१०. योगिराज श्री चन्द्रमोहन महाराज की जम्मू-काश्मीर की यात्रा	श्री रामदास गुप्ता	४५
११. ऋषिकेश आश्रम का वार्षिकोत्सव		४९
१२. श्री सद्गुरुदेव जी का आगामी कार्यक्रम		५२

संयुक्त सम्पादक
श्री 'दिव्य'

ॐ

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

वर्ष ३
अङ्क ४

'ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्'
मर्त्यो मृत्योर्मुखं न विशति, मुक्तिं माप्नोति सद्यः ।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविधपथान् योगशास्त्रोपदिष्टान्,
सत्काराणां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोग' ॥

जौलाई
१९७०

मैं परमात्मा को जानता हूँ।

वेदाहमेतमजरं पुराणं
सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात् ।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य
ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ॥

व्याख्या—परमात्मा को प्राप्त हुए महात्मा का कहना है कि 'वेद के रहस्य का वर्णन करने वाले महापुरुष जिन्हें जन्म रहित तथा नित्य बतलाते हैं, व्यापक होने के कारण जो सर्वत्र विद्यमान हैं—जिनसे कोई भी स्थान खाली नहीं है, जो जरा-मृत्यु आदि समस्त विकारों से सर्वथा रहित हैं और सब के आदि—पुराण पुरुष हैं, उन सबके आत्मा—अन्तर्यामी परब्रह्म परमेश्वर को मैं जानता हूं।'

हमारा विशेष लेखः—

समाधि की सिद्धियें

[योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज]

मैं अपने पिछले लेखों में कई बार बतला चुका हूं कि योग की बर्णाक्षरी मन की एकाग्रता से प्रारम्भ होती है। भगवान् पतंजलिदेव ने योग के जिन आठ अङ्गों का वर्णन किया वे इस प्रकार से हैं:—

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन आठ अङ्गों में से यदि एक भी विहीन हो जाता है तो योग का पूरा शरीर नहीं बनता वरन् वह अङ्गहीन कहलाता है।

बहुत से लोगों के मन का यह सिद्धान्त रहता है कि इस अष्टाङ्ग योग को सोपान क्रम से पालन करना चाहते हैं। सोपान-क्रम का अर्थ यह है जिस प्रकार मनुष्य सीढ़ी के एक डण्डे पर पैर रखकर उसके बाद उसके दूसरे डंडे पर पैर रखता है और उसके बाद तीसरे और चौथे पर। इस प्रकार क्रमशः पैर रखते रखते वह मनुष्य अपने चरम लक्ष्य भुवन-भवन की छत पर जा पहुंचता है। इसी प्रकार कोई कोई व्यक्ति अष्टाङ्ग योग को भी सोपान क्रम से पालन करना चाहते हैं। वे लोग यह कहते हुए देखे गये हैं। क्योंकि जो पहले यम, नियमों का पालन नहीं करते और उसके बाद आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि का पालन नहीं करते वे लोग पहले से ही आठवीं सीढ़ी समाधि पर कैसे आरूढ़ हो जावेंगे। मेरे विचार में अष्टाङ्ग योग को सोपान क्रम में सम्बद्धित करना विद्वान एवं बुद्धिमान मनुष्यों का कार्य नहीं है। हमारे शरीर में हाथ, पैर, मुख, नासिका, कान और आंखें आदि भिन्न-भिन्न अङ्ग और प्रत्यङ्ग हैं इनका हम सोपान क्रम से पालन करने का विचार करेंगे तो पहले हमें अपने पैरों की ही पालना करनी चाहिए। न कि मुख, कान, नासिका आदि की। क्योंकि मुख, कान, नासिका आदि आदि सोपान क्रम के हिसाब से पैरों के पीछे पड़ते हैं, किन्तु यह बात सिद्धान्त की नहीं है प्रत्युत बिल्कुल गलत एवं कपट सिद्धान्त की बात है। जिस प्रकार से मनुष्य अपने मुख के द्वारा अन्न ग्रहण करता है और वह अन्न पाकाशय में जाकर पच जाता है फिर—रस, रक्त आदि बन जाया करता है। वह अन्न पच करके एवं रस आदि बन करके सारे शरीर के अङ्ग और उपाङ्गों में व्यापक हो जाया करता है। उस रस के शरीर में व्याप्त हो जाने के बाद सारे शरीर को ही साङ्ग शरीर

कहते हैं, इसी प्रकार से योग के अङ्गीभूत यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि सभी अङ्गों के द्वारा योग शब्द की अभिव्यक्ति होती है और सभी अङ्गों का एक साथ पालन करना चाहिये। जो लोग योगाङ्गों को सोपान क्रम से पालन करना चाहते हैं वह भारी भूल पर हैं। इसलिए योग साधना के जिज्ञासुओं को सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों का एक साथ पालन करना चाहिए तभी अष्टाङ्ग योग की पूरी पूरी साधना बन सकेगी। मद्द मैं अपने पहले लेखों में भली प्रकार से बतला चुका हूं कि योग के इन आठ अङ्गों में पाँच बहिरङ्ग अङ्ग और तीन अन्तरङ्ग अङ्ग माने जाते हैं। योग के पाँच अङ्गों की साधना बहिर्मुखी वृत्ति रखते हुए भी साधक कर सकता है। किन्तु धारणा, ध्यान और समाधि इन तीन अन्त-रङ्गों का पालन साधक अन्तर्मुखी वृत्ति के द्वारा ही भली प्रकार कर सकता है इसलिए योग की वास्तविक साधना से ही आरम्भ होती है। इससे पहले अङ्क में हम भगवान पतञ्जलि देव के योग दर्शन के कैवल्यपाद के प्रथम सूत्र का वर्णन कर चुके हैं और उसमें विभिन्न प्रकार की कुछ सिद्धियों का वर्णन कर चुके हैं। वह सूत्र इस प्रकार है:—

जन्मौषधिमन्त्रतप :
समाधिजाः सिद्धयः ।

इस सूत्र में जन्म से होने वाली सिद्धियें औषधियों से होने वाली सिद्धियें मन्त्र, तप और समाधि से होने वाली सिद्धियों का वर्णन है।

मनुष्य सिद्धियों को अनेक प्रकार से प्राप्त कर सकता है। किन्तु योग की परिभाषा में महत्त्व समाधिजा सिद्धियों का ही है। समा-धिजा सिद्धियें मन की सिद्धियें हैं जो मनुष्य संसार में मन की शक्ति को बढ़ाना चाहता है उसको चाहिए योग के तीन अन्तरङ्ग अङ्गों का दृढ़ता के साथ पालन करना आरम्भ करे तभी वह मनुष्य समाधि के चरम लक्ष्य तक पहुँच सकता है। उन तीनों अङ्गों में सबसे पहले अंग का नाम धारणा है। धारणा की परिभाषा बतलाते हुए भगवान् पतंजलि देव जी ने अपने योगदर्शन के विभूति पाद के पहले सूत्र में धारणा की परिभाषा स्पष्टता के साथ बतला दी। सूत्र इस प्रकार है:—

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥

अर्थ—किसी एक लक्ष्य स्थान में अपने चित्त को एकाग्र करना धारणा की प्रमुख साधना है। इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए श्री व्यासदेव जी महाराज धारणा के अर्थ का बड़ा स्पष्ट अर्थ करते हुए निम्नांकित पंक्तियाँ लिखी हैं :—

इत्येवमादिषु देशेषु बाह्ये वा विषय
चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति धारणा ।

नाभि चक्रे, हृदय पुण्डरीके, मूर्ध्नि ज्योतिषि, नासिकाग्रे जिह्वाग्र इत्ये-वमादिषु देशेषु, बाह्ये वा विषये चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति धारणा ॥

नाभि चक्र हृदय कमल, मूर्धा ज्योति, नासिकाग्र आदि-आदि स्थानों में या किसी

भी आध्यात्मिक विषय में चित्त का वृत्तीमात्रेण संस्थान धारणा कहलाती है। मनुष्य अपने मन को तीक्ष्ण बना करके विविध साधनाओं के द्वारा चित्त के राजस, तामस भावों को नष्ट करके उपरोक्त किसी विषय में चित्त का वृत्तीबन्ध से एकाग्र करना धारणा कहलाती है। यही धारणा दृढ़ता के साथ अभ्यास की हुई ध्यान के रूप में परिवर्तित हो जाया करती है। हमारे शास्त्रों में इस प्रकार का लेख है—

प्राणायामेन पवनं,
प्रत्याहारेण चेन्द्रियम्।
वशीकृत्य ततः कुर्या-
च्चित्तस्थानं शुभाश्रये॥

अर्थात् प्राणायाम के द्वारा वायु पर जय प्राप्त करके और प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रियों को वश में करके फिर उसके बाद शुभ लक्षण चित्त को धारणा में स्थापित करे। धारणा से पहले पवनाभ्यास एवं प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रिय जय की साधना इसलिए कही गई ताकि मनुष्य का मन चित्त के राजस, तामस भावों को छोड़कर अपने लक्षीभूत धारणा में बिलकुल अवस्थित हो जाये। अभ्यासी मनुष्य को कभी घबराना नहीं चाहिए। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह फल को ईश्वराधीन छोड़ करके अपने कर्त्तव्य पर बिलकुल आरूढ़ रहे। इसी प्रकार की साधना को श्रीमद्भगवद्‌गीता में निष्काम कर्मयोग के रूप से वर्णन किया गया है। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए स्वयं यह आदेश दिया है—कि हे अर्जुन!

कर्मण्येवाधिकारस्ते-
मा फलेषु कदाचन।
माकर्मफल हेतुर्भूर्मा
ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

श्लोक का अर्थ यह है कि हे अर्जुन! कर्म करने में तुम्हारा अधिकार है फल में तुम्हारा बिलकुल कोई अधिकार नहीं, कर्मफल के पीछे मत पड़े रहो और यह भी नहीं होना चाहिए कि कर्मफल की अभिलाषा नहीं है, तो मनुष्य निकम्मा बनकर बैठ जाये। इसलिये धारणा का अभ्यास करनेवाले व्यक्तियों को मन को उत्साहित करके दृढ़ता से अपने अभ्यास में लगाये रखना चाहिए। उत्साह पूर्वक एवं लगातार किया हुआ अभ्यास बहुत जल्दी ही अपने परिणाम को दिखा दिया करता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य धारणा का अभ्यासी बनेगा त्यों-त्यों उसके ऊँचा भूमिका ज्ञान स्वतः ही उसके सामने प्रगट होने लग जायेगा। ध्यान की परिभाषा योगदर्शन में भगवान् पतंजलिदेव इस प्रकार बतलाते हैं—

ध्यान तत्र प्रत्यैकतानताध्यानम्॥

इस सूत्र पर व्यास भाष्य—

तस्मिन् देशे ध्येयालम्बनस्य,
प्रत्ययस्यैकतानता।

सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेणा परामृष्टो ध्यानम् ॥२॥

अर्थात् चित्त का ध्येय विषय में सब प्रकार के विषयों को छोड़ करके तेल धारावत् एकाग्र हो जाना ध्यान कहलाता है। इसी का नाम सदृश्य प्रवाह है। जब साधक अपने चित्त को इसी प्रकार से एकाग्र करता चला जाता है और पूर्व पुण्य प्रभाव से कोई भी किसी प्रकार का अन्तराय पैदा नहीं होता तब वही चित्त अपने ध्येय में तदाकाराकारित होकर अर्थमात्रेण भाषित होने लगता है। जिस समय चित्त ध्येय विषय में अपने आपको ध्येयाकार वाला बना लेता है उसी को हमारे योगाचार्यों ने समाधि कह करके परिभाषित किया है। भगवान पतंजलिदेव कहते हैं :—

समाधि— तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः ॥३॥

इस सूत्र पर व्यास भाष्य—

ध्यानमेव ध्येयाकार निर्भासं प्रत्ययात्मकेन स्वरूपेण शून्यमिवयदा भवति ध्येयस्वभावावेशात्तदा समाधि— दित्युच्यते ॥३॥

अर्थात् यह ध्यान ही ध्येयाकार रूप में परिवर्तित होकर उसी ध्येय रूप से भासित होने लगता है इसी का नाम समाधि है। और यह समाधि ही सभी अन्तरायों से बचकर संयम के रूप में बदल जाया करती है। इस समाधि का अभ्यास करने वाला योगी समाधिजा सिद्धियों का अधिकारी बन जाया करता है। तब जहाँ-जहाँ यह योगी संयम करता है वहाँ-वहाँ की सिद्धियें इसको उपलब्ध होती रहती है। योग-दर्शन के विभूति पाद में इन्हीं सिद्धियों का विषदरूप से वर्णन है। संयम की परिभाषा करते हुए भगवान् पतञ्जलिदेव ने

त्रयमेकत्र संयमः ॥४॥

कहकर संयम की परिभाषा बताते हैं। अभ्यासी का अभ्यास इतना दृढ़ होना चाहिए कि उसको धारणा काल, ध्यान काल और समाधि काल तीनों समय में भी उसके मन को विक्षिप्त करने वाला कोई भी अन्तराय पैदा न हो सके तभी संयम की दृढ़ता समझनी चाहिए जब तक संयम सुदृढ़ नहीं हो जाता तब तक वह समाधिजा सिद्धियों का अधिकारी भी नहीं बन पाता। इस बात को इस प्रकार समझ लेना चाहिए। हमारा चित्त परिणामी है और उसमें विभिन्न प्रकार के परिणाम इन्द्रिय विषय संयोग से पल-पल में होते रहते है। आँख ने किसी रूप को देखा हमारा परिणामी चित्त आँख का बल पाकर चटपट रूप विषयक बन गया। उसी समय कान ने किसी गम्भीर शब्द को सुना चित्त ने रूप को तत्काल छोड़ दिया और वह चित्त कर्णेन्द्रिय के द्वारा सम्बद्ध होकर के शब्द विषयक बन गया। थोड़ी ही देर बाद पीछे आकर किसी ने शरीर का स्पर्श किया तो परिणामी चित्त चटपट अपने शब्द विषयक को छोड़कर स्पर्श की ओर भाग निकला और

वह स्पर्श विषयक बन गया। इसी प्रकार से कहीं गन्ध को ग्रहण करता है। कहीं रस का भोगता है। क्षण-क्षण में इन्द्रियों के द्वारा आकर्षित हुआ चित्त विभिन्न परिणामों को प्राप्त होता रहता है इसलिए हमारा यह चित्त सर्वार्थक चित्त है। हमने अपने सर्वार्थक चित्त को एकाग्रता परिणाम की ओर बदलना है और उसका प्रमुख साधन हमारे पास धारणा है।

अनेक अर्थों को ग्रहण करने वाले चित्त को एकार्थक बनाना है और उसको एकाग्रता परिणाम के अन्दर परिणत करना है। परिणाम स्वरूप योगी के अनवरत अभ्यास करने पर ऐसा होगा ही। भगवान् पतंजलि देव कहते हैं—

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ
चित्तस्य समाधि परिणामः॥११॥

अर्थात् सर्वार्थकता के क्षय होने पर और एकाग्रता के उदय होने पर चित्त को एकाग्रता रूप समाधि परिणाम हुआ करता है। इस सूत्र पर भगवान् व्यासदेवजी चित्त के धर्मों को स्पष्ट करते हुए निम्नांकित पंक्तियाँ लिखते हैं—

सर्वार्थता चित्त धर्मः,
एकाग्रता चित्त धर्मः,
सर्वार्थतायाः क्षयः—
तिरोभाव इत्यर्थः,
एकाग्रताया उदयः—
आविर्भाव इत्यर्थः,

तयोर्धर्मित्वेनानुगतं चित्तं तदिदं चित्तमपायोपजननयोः स्वात्मभूतयोर्धर्मयोरनुगतं समाधीयते स चित्तस्य समाधि परिणामः॥११॥

अर्थात् धर्मी चित्त का सर्वार्थता भी धर्म है और एकाग्रता भी धर्म है। जब हम अपने चित्त को सर्वार्थता से छुड़ाकर एकाग्रता के रूप में बदलना चाहते हैं तो उसमें सर्वार्थता का क्षय हो जायेगा और एकाग्रता का उदय हो जायेगा। एकाग्रता के उदय हो जाने पर यह चित्त का समाधी परिणाम हो जायेगा। इस प्रकार अभ्यास करते-करते जब चित्त धारणा, ध्यान व समाधि तीनों में एक विषयक रहता चला जायगा तभी यह संयम पदारूढ़ हो सकेगा। जिस समय हम सर्वार्थिक चित्त को एकाग्रता में परिणित करना चाहते हैं उस समय इसके सर्वार्थता रूप धर्मी चित्त के जो धर्म परिणाम थे उनको बिलकुल छोड़ करके एकाग्रता रूप धर्म परिणाम को स्वीकार किया।

किन्तु इस धर्मी चित्त का यह एकाग्रता रूप धर्म परिणाम धारणा, ध्यान और समाधि तीनों में एक जैसा बना ही रहना चाहिए। यह नहीं होना चाहिए हमने जिस विषय को धारणा काल में वशीभूत बनाया है उस विषय में धारणा काल में तो हमारा चित्त एकाग्र होता चला जाय और बाद में ज्योंही ध्यान का समय आये उसी समय चित्त अन्तरायों से अभिभूत होकर किसी दूसरे पक्ष में अनुगत हो जाये। प्रस्तुत धारणा

काल में जिस लक्ष को जिस के लिए ध्येय बनाया था ध्यान काल में भी उसी में बराबर एकाग्र रहना चाहिए और इसी प्रकार से ज्योंही चित्त समाधि के धर्मों में परिणित हो उस समय भी चित्त के सामने जो विषय धारणा और ध्यान काल में ध्येय-भूत था समाधि काल में भी उसी लक्ष में ही समाहित होना चाहिए। तभी संयम की परिभाषा को प्राप्त हो सकता है। भगवान् पतंजलिदेव ने त्रयमेकत्र संयमः कह करके इसी विषय का पूरा-पूरा विवेचन कर दिया है। जिस समय संयम स्थिर पद हो जायगा तभी साधक संयम पर जय पा सकता है। भगवान् व्यास देव भाष्य करते हुए इस प्रकार लिखते हैं—

तस्य संयमस्य जयात्समाधि प्रज्ञाया भवत्या लोकः यथा यथा संयमः स्थिरपदो भवति तथा तथा समाधिप्रज्ञा विशारदी भवति ॥५॥

अर्थात् संयम के जय कर लेने पर समाधि प्रज्ञा का प्रकाश हो जाता है। ज्यों-ज्यों संयम स्थिरता को प्राप्त करता है त्यों-त्यों समाधि प्रज्ञा निर्मलता को प्राप्त होती है। ज्यों-ज्यों समाधि प्रज्ञा निर्मलता को प्राप्त होती जाय और संयम स्थिर पद हो जाय त्यों-त्यों उसका संयम की भूमियोंमें विनियोग करना चाहिए। भगवान् पतंजलि देव आज्ञा देते हैं:—

तस्य भूमिषुविनियोगः ॥६॥

अर्थात् :—

तस्य=संयमस्य जितभूमेर्याऽनन्तरा भूमिस्तत्र विनियोगः, न ह्यजिताधर-भूहिरनन्तरभूमिं विलङ्घ्य प्रान्तभूमिषु संयम लभते तद् भावाच्च कुतस्तस्य प्रज्ञाऽऽलोकः, ईश्वर प्रसादाज्जितोत्तर भूमिकस्य च नाधर भूमिषु परचित्तज्ञाना-दिषु संयमा युक्तः, कस्मात् ? तदर्थस्या-न्यत एवावगतत्वाद् भूमेरस्या इयम-नन्तरा भूमिरित्यत्र योग एवोपाध्यायः, कथम् ? एवमुक्तं।

अर्थात् संयम के जीत लेने पर उसके बाद वाली भूमिकाओं में संयम करना उपयुक्त है। पहली भूमिकाओं में जय प्राप्त किये बिना बीच की अन्तरा भूमिका को छोड़कर जो लोग प्रान्त भूमियों मे संयम करने का प्रयत्न करते हैं उन सब को स्फुट प्रज्ञालोक नहीं हो पाता और जिन विशेष भाग्यवान जीवों ने ईश्वर की कृपा से प्रान्त भूमियों में संयम करने का प्रयत्न करते हैं, उन सब को स्फुट प्रज्ञालोक नहीं हो पाता। और जिन विशेष भाग्यवान जीवों ने ईश्वर की कृपा से प्रान्त भूमियों में संयम को सिद्ध कर लिया है उनको उससे नीचे की भूमिकाओं में संयम उपयुक्त नहीं है। क्योंकि जितोत्तर भूमिक योगी को अधम भूमियों का ज्ञान साधारण अपेक्षा हो जायेगा। एक भूमि में जय प्राप्त कर लेने के बाद दूसरी भूमि का ज्ञान योगी को स्वतः ही होता रहता है। क्योंकि हमारे शास्त्रकारों

ने बिलकुल स्पष्ट रूपेण कहा दिया है—

"योगेन योगो ज्ञातव्यो,
योगो योगात्प्रवर्त्तते।
योऽप्रमत्तस्तु योगेन,
स योगे रमते चिरम्॥

अर्थात् योग से ही योग को जानना चाहिए, योग से ही योग चलता है जो योगाभ्यास में अप्रमत्त है वही व्यक्ति देर तक योगलीन रहता है। इसलिए योगाभ्यास परायण व्यक्ति को अपने आपको योग-विलीन करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार अभ्यास करने वाला व्यक्ति अपने धारणा, ध्यान और समाधि रूप संयम की सिद्धि करके उसकी भूमियों में विनियोग करना चाहिए। तभी वह समाधिजा सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है। इस लेख के आरम्भ में योग-दर्शन के कैवल्यपाद के एक सूत्र में निर्देशन किया था। वह सूत्र था—

"जन्म औषधि मंत्र तपः समाधिजाः सिद्धयः।"

अर्थात् कुछ सिद्धियें प्राणियों को जन्म से ही सिद्ध हो जाती है। जैसे पक्षियों का आकाश-गमन आदि। और कुछ सिद्धियां औषधियोंसे प्राप्त होती है जैसे पारदकी रसायन आदियों से काया-कल्प और कुछ सिद्धिये मंत्रों के जप करने से प्राप्त हुआ करती हैं। अपरोक्ष दर्शन आदि और कुछ सिद्धियें तप के द्वारा होती हैं कायक, अणुकाय आदि और ऐन्द्रियक दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि। इसके बाद समाधिजाः सिद्धियों का वर्णन इस सूत्र में है। समाधिजा सिद्धियें किस प्रकार से उपलब्ध होती हैं इसका विषद वर्णन इस छोटे से निबन्ध में हमने करने का प्रयत्न किया है। इन सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए मनुष्य को अष्टाङ्ग योग में सभी अङ्गों का यथार्थता से पालन करते हुए योग के तीन अन्तरङ्ग अंग धारणा, ध्यान, समाधि को पूर्णरूपेण अभ्यास में ले आना चाहिए। तभी वह समाधिजा सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है। संयम का कौन-सी-कौन-सी भूमियों में क्या उपयोग करना चाहिये और उसका परिणाम क्या रहेगा यह हम आगे के निबन्धों में समझाने का प्रयत्न करेंगे।

स्वर विज्ञान द्वारा रोग नाश

(श्री ओमप्रकाश पालीवाल)

स्वरोदय शास्त्र भी 'योग' का ही अंग है। यह भी योग की ही भाँति प्रत्यक्ष व आश्चर्यजनक फल का देने वाला है। स्वर शास्त्र जैसा दुर्लभ है, स्वरज्ञ गुरु का भी उतना ही अभाव है।

स्वर शास्त्र सीखने के लिए श्वास-प्रश्वास के सम्बन्ध में सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है, प्राणवायु 'निःश्वास-प्रश्वास' इन दो नामों से पुकारा जाता है। वायु खींचने का नाम निःश्वास और वायु छोड़ने का नाम प्रश्वास है। यह निःश्वास नासिका के दोनों छिद्रों से एक ही समय एक साथ समान रूप से नहीं चला करता। कभी बायें और कभी दाहिने पुट से चलता है। कभी-कभी एकाध घड़ी तक एक ही समय दोनों नाकों से समान भाव से श्वास प्रवाहित होता है। बायें नासापुट के श्वास को इड़ा अर्थात् चन्द्र नाड़ी तथा दाहिनी नासिका के श्वास को पिंगला अर्थात् सूर्य नाड़ी कहते हैं, और दोनों पुटों से एक समान चलने पर उसे सुषम्णा कहते हैं। प्रति दिन प्रातः काल सूर्योदय के समय से ढाई-ढाई के हिसाब से एक-एक नासिका से श्वास चलता है। इस प्रकार रात दिन में बारह बार बायीं और बारह बार दाहिनी नासिका से क्रमशः श्वास चलता है। किस दिन किस नासिका से पहले श्वास जारी होती है। इसका एक निर्दिष्ट नियम इस प्रकार है :—

> आदौ चन्द्र सिते पक्षे,
> भास्करस्तु सिते तरे।
> प्रति पत्तौ दिनान्याहु,
> स्त्रीणि त्रीणि क्रमोदये॥
>
> —पवन विजय स्वरोदय से

अर्थात् शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि से तीन-तीन दिन की बारी से चन्द्र अर्थात् बाईं नासिका से तथा कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि से तीन-तीन दिन की बारी से सूर्य नाड़ी अर्थात् दाहिनी नासिका से पहले श्वास प्रवाहित होता है। अर्थात् शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा इन नौ दिनों में प्रातः काल सूर्योदय के समय पहले बाईं नासिका से तथा चतुर्थी-पंचमी-षष्ठी दशमी, एकादशी-द्वादशी इन छः दिनों में प्रातः काल पहिले दाहिनी नासिका से श्वास चलना प्रारम्भ होता है, और वह ढाई घड़ी तक रहता है। उसके बाद दूसरी नासिका से श्वास जारी होता है। कृष्णपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस्या इन नौ दिनों में सूर्योदय के समय पहिले दाहिनी नासिका से

तथा चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी, द्वादशी इन छः दिनों में सूर्य के उदय काल में पहले बाईं नासिकासे श्वांस आरम्भ होता है, और ढाई घड़ी के बाद दूसरी नासिका से चलता है। इस प्रकार नियम पूर्वक ढाई-ढाई घड़ी तक एक-एक नासिका से श्वांस चलता है। यही मनुष्य जीवन में श्वांस की गति का स्वाभाविक नियम है ?

षट्‌त्रिंशद् घटी मध्ये
पंच तत्त्वानि निर्दिशेत्।
—स्वर शास्त्र

अर्थात् प्रति दिन रात दिन की ६० घड़ियों में ढाई-ढाई घड़ी के हिसाब से एक एक नासिका के निर्दिष्ट क्रम से श्वांस चलने के समय क्रमशः पंच तत्त्वों का उदय होता है। इस श्वांस-प्रश्वांस की गति को समझकर कार्य करने पर शरीर स्वस्थ रहता है, और मनुष्य दीर्घजीवी होता है, और फल-स्वरूप सांसारिक वैषयिक सब कार्यों में सफलता मिलने पर सुखपूर्वक संसार यात्रा पूरी होती है। कहा भी है :—

सब योगन को योग है,
सब ज्ञानन को ज्ञान।
सर्व सिद्ध की सिद्ध है,
तत्त्व स्वरन को ध्यान॥

अर्थात् वाम (इडा) नासिका का श्वांस फल जिस समय बायीं अर्थात् इडा चन्द्र नासिका से श्वांस चलता हो उस समय स्थिर कार्यों को करना चाहिए। जैसे आभूषणों धारण करना, दूर यात्रा करना, आश्रम में प्रवेश, राज मन्दिर बनाना। तालाब देव स्थान की प्रतिष्ठा करना। इसी समय यात्रा, दान, विवाह, नया कपड़ा पहनना, शान्ति कर्म, पौष्टिक कर्म, दिव्यौषधि सेवन आदि शुभ कार्य करने चाहिए। चन्द्र नाड़ी के चलने के समय किए हुए शुभ कार्य सिद्ध होते हैं। परन्तु वायु-अग्नि और आकाश तत्त्व के उदय के समय उत्तम कार्य नहीं करने चाहिये। दक्षिण (पिंगला) नासिका का श्वांस फल जिस समय पिंगला नाड़ी (सूर्य) अर्थात दाहिनी नाक से श्वांस चलता हो उस समय कठिन कर्म करने चाहिए। जैसे क्रूर विद्या का अध्ययन, स्त्री संसर्ग, नौकादि आरोहण, तान्त्रिक मतानुसार वीर मंत्रादि, संमत उपासना वैरी को दण्ड, गमन, पशु, विक्रय, संगीत अभ्यास, यन्त्र-तन्त्र बनाना, किले और पहाड़ पर चढ़ना, हाथी, घोड़ा आदि की सवारी सीखना, व्यायाम, षटकर्म साधन यक्षिणी, वेताल तथा भूतादि साधन औषधि सेवन, लिपि-लेखन, दान, युद्ध, भोग, स्नान, आहार आदि।

सुषुम्ना श्वांस फल

दोनों नाकों से श्वांस चलने के समय किसी प्रकार का शुभ अथवा अशुभ कार्य नहीं करना चाहिए उस समय कोइ भी कार्य करने से वह निष्फल होगा। उस समय योगाभ्यास ध्यान धारणादि के द्वारा केवल भगवान को स्मरण करना चाहिए। सुषुम्ना नाड़ी से श्वांस चलने के समय किसी को शाप या वरदान करने पर वह सफल होगा।

निश्वाँस बदलने का उपाय

कार्य भेद से तथा अन्यान्य अनेक कारणों से एक नासिका से दूसरी नासिका में वायु की गति को बदलने की आवश्यकता हुआ करती है। जिस नासिका से श्वांस चलता हो उसके विपरीत दूसरी नासिका को अंगूठे से दबा देना चाहिए, और जिससे श्वांस चलता हो उसके द्वारा वायु खींचना चाहिए। फिर उसको दबाकर दूसरी नासिका से वायु निकालना चाहिए। कुछ देर तक इसी तरह एक से श्वांस लेकर दूसरी से निकालते रहने से अवश्य श्वांस की गति बदल जायेगी। दूसरा उपाय यह है कि जिस नासिका से श्वांस चलता हो उसी करवट लेटकर यह क्रिया करने से बहुत शीघ्र श्वांस की गति बदल जाती है। इस क्रिया के बिना भी केवल उस करवट कुछ देर तक सोये रहने से भी श्वांस की गति बदल जाती है।

चिर यौवन प्राप्ति का उपाय

जिस समय जिस अंग से जिस नाड़ी से श्वांस चलता है उस समय उसी नाड़ी से रोध करना होगा। जो बार-बार श्वांस रोध और मोचन करने में समर्थ है वह दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है। स्वामी चरणदास जी के कथनानुसार—

बायें करवट सोइये,
जल बायें स्वर पीव।
दहिने स्वर भोजन करे,
तो सुख पावत जीव॥
बायें स्वर भोजन करे,
दहिने पीवे नीर।
दश दिन भूलें यों करे,
आवे रोग शरीर॥
दहिने स्वर झाड़े फिरे,
बायें लघु शंकाय।
युक्ति ऐसी साधिये,
दीन्हों भेद बताय॥
चन्द्र चलावे दिवस को,
रैनि चलावे सूर।
नित साधन ऐसे करे,
होय उमरि भरपूर॥

उपर्युक्त कथन के अनुसार चलने से मनुष्य पूर्ण स्वस्थ एवं चिरजीवी हो सकता है।

रोग और उसके निवारण का उपाय

ज्वर—ज्वर का आक्रमण होने पर या आक्रमण की आशंका होने पर जिस नासिका से श्वांस चलता हो उस नासिका को बंद कर देना चाहिए। जब तक ज्वर न उतरे और शरीर स्वस्थ न हो जाय तब तक उस नासिका को बंद रखना चाहिए। ज्वर काल में मन ही मन सदा चाँदी के समान श्वेत वर्ण का ध्यान करना चाहिए। ऐसा करने से ज्वर बहुत शीघ्र शान्त हो जाता है। सिन्दुवार की जड़ रोगी के हाथ में बांध देने से भी सब प्रकार के ज्वर निश्चय ही दूर हो जायेंगे।

सिरदर्द—सिरदर्द होने पर दोनों हाथों की कोहनी के ऊपर धोती के किनारे अथवा रस्सी

से खूब कस कर बांध देने चाहिए। ऐसा करने से पांच, सात, दस मिनट में सर दर्द चला जायगा। कोहनी पर इतना जोर से बांधना चाहिए कि रोगी को हाथ में अत्यन्त दर्द हो। सिर दर्द अच्छा होते ही बांह खोल देनी चाहिए।

आधाशीशी के दर्द में जिस तरफ के कपाल में दर्द हो ऊपर लिखे अनुसार उसी तरफ की कोहनी के ऊपर जोर से रस्सी बांधनी चाहिए। थोड़ी देर में रोग जाता रहेगा। अगर दूसरे दिन दर्द मालूम हो तो जिस नाक से स्वर चलता हो उसे बन्द कर देना चाहिये और हाथ को भी बांध देना चाहिए इससे निश्चय ही लाभ होगा। सिर दर्द गर्मी के कारण हो तो प्रातःकाल शय्या से उठते ही नासापुट से शीतल जल पीना चाहिए।

उदर विकार :—भोजन जल पान आदि जब जो कुछ खाना हो वह दाहिनी नाक से श्वांस चलते समय खाना चाहिए। ऐसा करने से आहार शीघ्र पच जायेगा। भोजन के बाद थोड़ी देर बायीं करवट सोना चाहिए या भोजन के बाद दस-पन्द्रह मिनट तक दाहिनी नाक से श्वांस चलाना चाहिए। भारी भोजन होने पर भी वह शीघ्र पच जायेगा और स्थिरता के साथ बैठकर एक-एक नाभि मंडल में दृष्टि जमाकर नाभिकन्द का ध्यान करने से एक सप्ताह में उदरमय रोग ठीक हो जाता है।

श्वांस रोककर नाभि को खींचकर नाभि की ग्रंथि को एक सौ बार मेरुदण्ड से मिलाने से आमादि उदरामय जनित सब तरह की पीड़ायें दूर हो जाती हैं और जठराग्नि तथा पाचन शक्ति बढ़ जाती है।

प्लीहा—रात को बिछौने पर सोकर और सवेरे शय्या त्याग के समय हाथ और पैरों को सिकोड़ कर छोड़ देना चाहिए। फिर कभी इस करवट कभी उस करवट टेढ़ा-मेढ़ा शरीर करके सारे शरीरको सिकोड़ना-फैलाना चाहिए। प्रति दिन चार-पांच मिनट ऐसा करने से प्लीहा यकृत (तिल्ली लीवर) के रोग दूर हो जाते हैं। सर्वदा इसका अभ्यास करने से प्लीहा यकृत रोग की पीड़ा कभी नहीं भोगनी पड़ती।

दन्त रोग :—प्रति दिन जितनी बार मल, मूत्र त्याग करो उतनी बार दांतों की दोनों पंक्तियों को मिलाकर जरा जोर से दबाये रखो। जब तक मल या मूत्र निकलता रहे तब तक दांत से दांत मिलाकर इस प्रकार दबाये रखना चाहिए। हमेशा या कुछ दिन ऐसा करने से कमजोर दांतों की जड़ मजबूत हो जायेगी। सदा करने से दन्त मूल दृढ़ हो जाता है। तथा दांतों में कोई बीमारी नहीं होती।

दमा या श्वांस रोग :—जब दमे का जोर का दौरा हो तब जिस नासिका से श्वांस चलता हो बन्द करके दूसरी नासिका से श्वांस चला देना चाहिए। दस पन्द्रह मिनट में जोर कम हो जायेगा। प्रति दिन ऐसा करने से एक माह में रोग शान्त हो जायेगा। दिन में जितने ही समय तक यह

किया अधिक की जायेगी उतना ही शीघ्र यह रोग दूर होगा।

वात रोग :— प्रति दिन भोजन के बाद कंघी से सिर बाहना चाहिए। कंघी इस प्रकार चलाना चाहिए कि उसके कांटे सिर को स्पर्श करें। उसके बाद वीरासन से बैठ कर अर्थात् दोनों पैर पीछे की ओर मोड़कर उनके ऊपर दबाकर १५ मिनट बैठना चाहिए। प्रतिदिन दोनों समय भोजन के बाद इस प्रकार बैठने से कितना भी पुराना वात क्यों न हो निश्चय हो अच्छा हो जायेगा। रबड़ की कंघी नहीं करना चाहिए।

नेत्र रोग :— प्रतिदिन सबेरे बिछौने से उठते ही सबसे पहले मुँह में जितना पानी भरा जा सके उतना भरकर दूसरे जल से आंखों को बीस बार भपटा मार कर धोना चाहिए।

प्रतिदिन दोनों समय भोजन के बाद हाथ मुंह धोते समय कम-से-कम सात बार आंखों में जल का भपटा देना चाहिए जितनी बार मुंह में जल डालो उतनी ही बार आंख और मुंह धोना चाहिए। प्रतिदिन स्नान के समय तेल मालिश करते समय सब से पहले दोनों पैरों के अंगूठों के नखों को तेल से भर देना चाहिए, और फिर तेल लगाना चाहिए। इन नियमों का पालन करने से आंखों में कोई बीमारी होने की संभावना नहीं रहती।

रक्त-शुद्धि के लिए :—नियम पूर्वक शीतली कुम्भक करने से कुछ दिनों में शरीर का रक्त शुद्ध और ज्योति युक्त हो जाता है।

शीतली कुम्भक का नियम:— जिह्वा द्वारा वायु को खींचकर उदर में भरना चाहिए फिर क्षण भर उसको पेट में रोक कर दोनों नाकों से बाहर निकाल देना चाहिए। इस रीति से बार-बार वायु खींचने से कुछ दिन में रक्त साफ और शरीर कामदेव के समान कान्ति पूर्ण हो जाएगा और अजीर्ण तथा कफ पित्तादि रोग पैदा नहीं होंगे।

कुछ उपयोगी उपाय

१— स्मरण शक्ति कम हो जाने पर मस्तक के ऊपर एक काठ की कील, उसके ऊपर एक काठ का टुकड़ा रखकर धीरे-धीरे ७४ पर आघात करना चाहिए।

२— प्रतिदिन आध घण्टे पद्मासन से बैठ कर दांतों की जड़ में जीभ का अग्र भाग दबाकर रहने से सब प्रकार की व्याधियां नष्ट हो जाती हैं।

(३) प्रातः नींद टूटने पर जिस नासिका से श्वांस चलता हो उस ओर का हाथ मुँह पर रखकर शय्या से उठने पर मनोकामना सिद्ध होती है।

(४) जो दिन में बायीं नासिका से और रात में दाहिनी नासिका से श्वांस लेता है उसके शरीर में कोई पीड़ा नहीं होती। आलस्य दूर होता है और दिनों-दिन चेतना बढ़ती है।

(५) सायंकाल श्वेत-रक्त और श्याम वर्णों का ध्यान करने से वायु, पित्त और कफ इन तीनों धातुओं का साम्य होता है और शरीर पूर्ण स्वस्थ हो जाता है।

—×०×—

श्री मत्स्येन्द्रनाथ की योग-दीक्षा

(श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र द्वारा)

'महासिद्ध मत्स्येन्द्रनाथ' नामक लेख के अन्तर्गत महापुरुषों के अवतार ग्रहण सम्बन्धी रहस्यों का मूल कारण, समय के प्रवाह में संस्कारवश पीड़ित मुमुक्षुजनों को इस असार-संसार से तार देना हुआ करता है, ऐसे बताया गया है। ऐसे लोक कल्याण करने वाले सिद्ध संतों का वर्णन निम्न श्लोक में बहुत ही उचित ढंग से किया गया है :—

शान्ता महान्तो निवसन्ति संतो
वसन्त वल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जना-
नहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥

—विवेकचूडामणि ३६

इस दुस्तर संसार सागर से स्वयं पार होकर शांत और महान् ऐश्वर्य युक्त संतजन निःस्वार्थ बुद्धि से दूसरे लोगों को भी तारते हुये इस पृथ्वी पर वसन्त के समान लोकोपकार करते हुये निवास करते हैं। शैशवावस्था से ही वैराग्यमय भावों में निरन्तर मन को निहित रखने वाले मत्स्येन्द्रनाथ ने जब शक्ति युक्त युवावस्था में प्रवेश किया, तब उनके अन्दर परम शक्ति सम्पन्न सद्गुरु की प्राप्ति के लिये उत्तम भाव उत्पन्न होने लगे। उद्यमी व्यक्ति जहां अपने पुरुषार्थ से अलभ्य वस्तु की प्राप्ति कर लिया करता है वहीं आलसी अपने पुरुषार्थ को भी खो बैठता है। श्री मत्स्येन्द्रनाथ जी ने अपने को योग विद्या में पूर्णरूपेण पारंगत करने की अभिलाषा से भगवान् सदाशिव को श्री सद्गुरु रूप में वरण किया तथा इस कठिन इच्छा को कार्यान्वित करने के लिये बद्रिकाश्रम के घनघोर जंगलों में तपश्चर्या में संलग्न हो गये। 'गुरु' की प्राप्ति सभी को नहीं हुआ करती है। विरले भाग्यवान पुरुषों को वह 'गुरुसत्ता' स्वयं अपनाया करती है। इसीलिये तो संतवाणी जगह-जगह स्वयं मुखरित हो उठी है।

यह तन विष की बेलरी,
गुरु अमृत की खान।
शीस दिये जो गुरु मिलें,
तो भी सस्ता जान॥

प्राणों को यत्न से समग्र शरीर को दाहिने पैर के अंगूठे पर साधकर, करबद्ध दोनों हाथ आकाश की ओर किये मत्स्येन्द्रनाथ अपने मन को भगवान् सदा शिव की पापहर मूर्ति में निश्चल रूप से बाँधे हुये घनघोर तप में प्रविष्ट हुये। ऐसा करते-करते बारहवां वर्ष जब व्यतीत होने वाला था, तब अनेकों सिद्ध, देवगण तथा स्वयं भगवान

विष्णु एवं ब्रह्माजी ने साक्षात् प्रकट होकर विविध प्रकार के वरों से मत्स्येन्द्रनाथ को मद भ्रष्ट् करना चाहा तथा इस कठिन तपश्चर्या से विरत होने के लिये सुभाव देते रहे परन्तु दृढ संकल्प से हृदयस्थित भगवान् सदाशिव के पास परम पावनी मूर्ति के अविचल ध्यान में निमग्न मत्स्येन्द्रनाथ अपनी तपश्चर्या से तभी विरहित हुये जब स्वयं कैलाशनाथ भगवान् शंकर ने प्रेम पाह्लादित होकर अपने वरद्-हस्त को उनके सिर पर रखकर कहा—'वत्स ! तुम्हारे मनोभावों को जानकर हमें प्रतीव प्रसन्नता हुई है, तुम वर मांगो।'

भगवान् आदि योग-प्रणेता शंकर जी को अपने समक्ष देखकर मत्स्येन्द्रनाथ बोले—'प्रभो! आप जगद्‌गुरु है। यदि आप हम पर प्रसन्न है, तो हमें गुरु-दीक्षा दें तथा साथ ही आप अपने वेषसे हमें आभूषित भी करदें। तथास्तु, कहकर, भगवान् सदाशिव मत्स्येन्द्रनाथ को योग-दीक्षा देने एवं अपने वेष से अलंकृत करने के लिये कैलाश ले आये।

वहाँ भगवान् शंकर जी ने मत्स्येन्द्रनाथ को योग-दीक्षा प्रदान करके अपने एक-एक वेष सम्बन्धी वस्तुओं से अलंकृत करते हुये उन वेषों के रहस्यमय अर्थों का भी उपदेश किया।

विभूति महत्त्व :—मत्स्येन्द्रनाथ के ऊपर भस्म डालकर भस्म का अर्थ बताते हुये भगवान् ने कहा—'बेटा ! इस भस्म को धारण करनेसे तू पृथ्वीके सदृश हो गया, जिस प्रकार पृथ्वी अच्छी व बुरी दोनों वस्तुओं से अप्रभावित है, उसी प्रकार से ज्ञानी द्वारा सद्-व्यवहार तथा अज्ञानियों द्वारा किया गया कुत्सित व्यवहार तुम्हें प्रभावित नहीं करेगा।

नाद—यज्ञोपवीत:—पुनः नाद जनेऊ पहनाकर भगवान् आशुतोष ने कहा—'हे वत्स ! इस नाद को धारण करके तुम आज नूतन जन्म ग्रहण कर रहे हो। यह सदा तुम्हें सांसारिक दोषों से दूर रखकर आत्मोत्कर्ष की ओर बढ़ाता रहेगा। इस 'नाद' को ही 'गुरु' समझो। यहाँ 'नाद' के सम्बंध में शास्त्रोक्त विचार पाठकोंको समझना चाहिये। 'नाद' का अर्थ है 'अनाहत' अर्थात् बिना दो भौतिक वस्तुओं के टकराये उत्पन्न हुई ध्वनि। इस नाद के बारे में नाद बिन्दु उपनिषद् में निम्न प्रकार से वर्णन मिलता है :—

श्रूयते प्रथमाभ्यासे नादो
नानाविधो महान्।
वर्धमाने तथाभ्यासे
श्रूयते सूक्ष्म् सूक्ष्मतः॥
आदौ जलधिजीमूत
भेरी निर्झर सम्भवः।
मध्ये मर्दल शब्दाभो
घंटाकाहलजस्तथा॥
अन्ते तु किंकिणीवंश-
वीणाभ्रमर निःस्वनः।
इति नाना विधा नादाः
श्रूयन्ते सूक्ष्म सूक्ष्मतः॥

महति श्रूयमाणे तु
महा भेर्यादिक ध्वनौ।
तत्र सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं
नाद मेव परामृशेत्॥
घन मुत्सृज्य वा सूक्ष्मे
सूक्ष्म मुत्सृज्य वा घने।
रममाणमपि क्षिप्तं
मनो नान्यत्र चालयेत्॥

अर्थात:— साधक अपनी प्राथमिक अभ्यासावस्था में नाद, जोर-जोर बादल की गड़गड़ाहट, समुद्र गर्जना, इत्यादि की ध्वनियों के समान सुना करता है। परन्तु साधना एवं अभ्यास को उत्तरोत्तर विधि पूर्वक बढ़ाते रहने पर ध्वनि मधुर एवं मंद होकर किङ्किणी, भ्रमर-गुन्जन, बंशी, वीणा ध्वनि की तरह सुनाई पड़ने लगती है। इन ध्वनियों में मंद नाद का एकाग्रचित्त से चिन्तन करना चाहिये। साधक को मंद नाद से घने तथा नाद से मंद नाद की ओर चिन्तन करते हुये अपने मन को नाद (ध्वनि) में लय रखना चाहिये। यही नाद अन्त में समाधि का जनक हो जाया करता है। नाद-योग कठिन होते हुये भी सद्गुरु कृपा एवं साधक की पात्रता के आधार पर सहज साध्य हुआ करता है। कठिनता के सम्बन्ध में महात्मा पलटू दास की निम्नलिखित पंक्ति विचार-णीय है:—

'रण का चढ़ना सहज है
मुश्किल करना योग।'

नाथ-सम्प्रदाय के सिद्धों में मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, भर्तृहरिनाथ इत्यादि सिद्धों का नाम आज भी विश्व विदित है। इन लोगों ने नाद-योग की साधना को ही अपने पथ में प्रधानता दी है। ऐसे हठयोग, राजयोग को भी इस पंथ में समान रूप से आदर दिया गया है। निम्न कुछ पंक्तियों में श्रीभर्तृहरि-नाथ जी ने नाद के विषय में निज अनुभव व्यक्त किया है—

बीज नहीं अंकुर नहीं।
नहीं रूप रेष आकार नहीं।
उदै अस्त तहाँ कला न जाइ।
तहाँ भरथरी रहा समाइ॥
मारी मघुर साधी निंद।
सुपिनै जाता राषो बिंद।
जरा मरण नहिं व्यापै रोग।
कहै भरथरी धनि-धनि योग॥
नादा बिंद बजाइले दोऊ।
पुरिलै अनहद बाजा॥
एकांतिका बासा सोधिले भरथरी।
कहै गोरष मछिन्द्रका दासा॥

भगवान् आदिनाथ ने नाद-योग की विधिवत् दीक्षा मत्स्येन्द्रनाथ को प्रदान करने के अतिरिक्त कई कुण्डलादि चिन्हों को भी दिया तथा उनके रहस्यमय अर्थ का भी बोध कराया। उत्तमाधिकारी तथा साथ ही साथ योग जिज्ञासु होने के कारण कुछ ही दिनों में जगद्गुरु भगवान् शिव की अहैतुकी कृपा से मत्स्येन्द्रनाथ पूर्ण योगवित् बन गये। इसके

पश्चात् भगवान् ने मत्स्येन्द्रनाथ को आज्ञा देकर कहा—'अब तुम इस महान योग-विद्या द्वारा संसार के मुमुक्षु जनों का कल्याण करो। पुत्र! संसार में योग-विद्या को प्राप्त करने वालों की तीन श्रेणियां हैं। प्रथम उत्तमाधिकारी, द्वितीय मध्यमाधिकारी तथा तृतीय कनिष्ठ अधिकारी। वे संस्कारी जीव जो मात्र सद्गुरु देव की शक्तिपात प्राप्त करके अपने वैराग्यभाव से सहज ही योग को प्राप्त कर लेते हैं, वहां जीव उत्तमाधिकारी कहलाते हैं। यदि मध्यमाधिकारी जीव को योगवित बनाना हो तो उनको तप स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान में विशेषतया लगाना चाहिए। यदि कनिष्ठ अधिकारी को भी इस मार्ग में दीक्षित करना हो तो, ऐसे अधिकारियों को यम नियमादिक (अष्टाङ्ग-योग) आठ उपायों में प्रवेश कराना चाहिए। कालान्तर में सम्पूर्ण चराचर उसी ब्रह्म में विलीन होगा। परन्तु पात्रता के भेद से शिक्षा दीक्षा में भी अन्तर आ ही जाया करता है। उपर्युक्त भावों की पुष्टि वेद ने भी की है:—

इमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां वैश्याय च शूद्राय स्वाय चारणाय च।

अर्थात्—'यह कल्याणमयी वाणी सब मनुष्यों के लिये है। इसका उपदेश सब को दिया जाना चाहिये। ब्राह्मण और क्षत्रिय को वैश्य और शूद्र को, अपने को और पराये को।"

यहां 'पराया' शब्द का अर्थ बहुत विस्तृत दायरे में लिया गया है। इस पराये शब्द के अन्तर्गत सृष्टि के सभी जीव समाविष्ट किये जा सकते हैं। समय के अन्तराल में ऐसे कितने ही योग युक्त महापुरुष हुये हैं जिन्होंने समाज-कल्याण का भाव रख करके अहंकार की आंधी में भटकते जीवात्माओं को योगैश्वर्य के अद्भुत चमत्कारों से आकर्षित कर उनको परम लक्ष्य की प्राप्ति करा दी है। महात्मा ज्ञानेश्वर देव जी द्वारा शक्ति पातित भैंस के बच्चे का वेद ध्वनि करना। यह सब अनेकों ऐतिहासिक घटनायें योग शक्ति के ज्वलन्त उदाहरण हैं। यहां एक ऐसी ही घटना जो कि हमारे परम पूज्य सहज कृपालु श्री गुरुदेव जी से सम्बंधित है श्रद्धालु योग जिज्ञासु जनों के हितार्थ प्रकट करना उचित होगा।

वैसे तो आनन्दकन्द श्री गुरुदेवजी (योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज) के प्रत्येक जगह के योग प्रचार कार्य-क्रमों में अलौकिक घटनाओं का प्रवाह उमड़ता ही है। जो सत्संगी या हमारे गुरु-भाई हैं उनसे यह बातें छिपी नहीं हैं। परन्तु एक बार के योग प्रचार कार्य-क्रम में एक सद्गृहस्थ किसानने श्री गुरुदेवजी से विनम्र प्रार्थना की कि महाराज जी जब आपके बच्चे आरती के पश्चात् 'प्रभो पाहि मामनन्तनामरीश शंभो' की ध्वनि लगाते हैं ठीक उसी समय ईख से रस निकालने वाले कोल्हू में चल रहे बैलों

में से एक बैल पत्थरवत् खड़ा हो जाता है। उसकी दोनों आंखें खुली ऊपर उलटी रहती हैं। परन्तु ध्वनि के बन्द होने पर वह सहज रूप से पुनः अपने कार्य में लग जाता है। अनेक प्रयास करके मैं हार गया, परन्तु ध्वनि के समय पत्थर-मूर्ति की तरह जड़ीभूत हुआ वह बैल एक इंच भी न हिलता है न आगे बढ़ता है। श्री गुरुदेवजी ने सहज मुस्कान से उपस्थित जन समुदाय को बताया कि ध्यान में एकाग्रचित्त होकर जब मेरे साधक बच्चे दिव्य अनुभूतियों में निमग्न मन से ध्वनि करते हैं तो उस समय पास ही मशीन में लगा वह बैल भी अपने पूर्व जन्मादिक शुभ संस्कारवश एकाग्रावस्था को प्राप्त हो जाता है। ऐसे महापुरुषों के सानिध्य को प्राप्त करके मूढ़ावस्था के जीव (पशु इत्यादि) जब कृतार्थ हो सकते हैं तो मनुष्यों का तो परम उत्थान अवश्य ही हो जाया करता है। इसीलिये भगवान् आदिनाथ श्री महादेव जी की आज्ञा पाकर मत्स्येन्द्रनाथ जी ने योग का अद्भुत मार्ग संसार में फैलाया। इतिहास साक्षी है, इस भारत-भूमि में ही नहीं अपितु चीन, तिब्बत तथा अन्य पश्चिम दिशा के देश के लोगोंने भी योग-मार्ग को अपना करके उस समय अपने को भौतिक एवं पारलौकिक लाभों से कृतार्थ कर लिया। मत्स्येन्द्रनाथ की कृपा से गोरक्षनाथ महाराज, भर्तृहरि इत्यादि अनेक सिद्धों का आविर्भाव हुआ, जिनकी याद को आज भी जागृत किये हुये अनेक तीर्थ, नगर, नेपाल तथा भारत भूमि में स्थित हैं।

सत्यदर्शी लोग

- जो व्यक्ति पर स्त्रियों को माता तुल्य मानकर चलते हैं वे वस्तुतः सत्य को समझते और देखते हैं।
- जो लोग दूसरे की पसीने की गाढ़ी कमायी को मिट्टी तुल्य मानते हैं वे वस्तुतः सत्य को समझते और देखते हैं।
- जो लोग अपनी तरह समस्त प्राणियों को समझते हैं उनके दुःख-सुख, हानि-लाभ इत्यादि को आत्म-तुल्य महत्व देते हैं वे वस्तुतः सत्य को समझते और देखते हैं।

—नीति-वचन

निद्राजित (निद्रा पर विजय)

द्वारा संकलित :—

[श्री विष्णुदत्त शर्मा, एम. एस-सी. एम. टी-एस. जापान]

रिसर्च स्कॉलर, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

महापुरुषों की चारित्रिक उपलब्धियों को सम्मान सूचक उपाधियों से विभूषित करना आर्य संस्कृति की एक विशेषता रही है। गुणीजन के गुणों का समादर करने से समाज में गुणों की प्रस्थापना होती है। रामायण तथा महाभारत में गुण प्रकाशक विशेषणों का प्राचुर्य है। व्यवहार में ऋजुता (सीधापन) होने के कारण तृतीय पाण्डव का नाम "अर्जुन" हुआ उसे "गुडाकेश" आदि अनेक उपाधियां प्राप्त हुयीं। "गुडाकेश" का अर्थ है निद्राजित, निद्रा को जीतने वाला। यह मन तथा इन्द्रियों पर जय पाकर ही संभव होता है।

निद्रा पर आंशिक विजय नेपोलियनने भी प्राप्त की थी। वह युद्ध कालमें कई दिनों तक अश्वारूढ़ रहते हुये अश्वपृष्ठ पर ही चलते-चलते सो लेता था। नेपोलियन ध्यान की एकाग्रता के कारण एक ही समय में कई व्यक्तियों की बातें सुन लेता था।

मनुष्य के शरीर में शारीरिक एवं मानसिक श्रम करने से एक विषैला तत्त्व उत्पन्न हो जाता है जो थकान के रूप में शरीर एवं मन को कुछ समय के लिये मंद कर देता है। इसकी मादकता के प्रभाव से निद्रा आती है और प्रगाढ़ निद्रा के द्वारा ही इस विषाक्त त्याज्य पदार्थ का शमन श्रेष्ठ प्रकार से होता है।

यदि यह संभव हो सके कि शारीरिक एवं मानसिक श्रम करने पर भी विषैला त्याज्य पदार्थ नाम मात्र के लिये ही उत्पन्न हो तथा थकान न्यूनतम हो तो निद्राकी आवश्यकता भी अत्यल्प रह जायेगी। यह उपलब्धि होने पर यदि कोई व्यक्ति अपनी प्रबल इच्छा शक्ति अथवा संकल्प बल के द्वारा जब चाहे तब, तथा जितना भी अल्प समय के लिये चाहे उतने ही समय तक सो सके, तो वह व्यक्ति निद्राजित ही कहलायेगा।

यह जान लेना आवश्यक है कि मस्तिष्क ही शरीर पर शासन करता है और शारीरिक थकान की अपेक्षा मानसिक थकान कहीं अधिक कष्टकर होती है। मानसिक थकान का रहस्य वास्तव में चिन्तन नहीं होता है बल्कि चिन्ता आदि चिन्तन के विकार होते हैं। मस्तिष्क भी हृदय की भांति जीवन भर निरन्तर काम करता रहता है और केवल मनोविकार ही उसमें केवल थकान के लक्षण उत्पन्न करते हैं। घृणा क्रोध, उत्तेजना, क्लेश, चिन्ता, भय, निराशा, ईर्ष्या-द्वेष, प्रमाद,

ग्लानि, लोभ, मोह, अहंकार आदि मनोविकार हैं। समस्त मनोविकारों का मूल कारण केवल मोह है "मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला"। यदि मनुष्य भोजन से प्राप्त ऊर्जा को इन विकारों द्वारा नष्ट न करे तो अत्यल्प भोजन ही पर्याप्त हो जाये। मनुष्य अपने शरीर, इन्द्रियों तथा मन को जिस मात्रा में निर्विकार कर इन्द्रिय निग्रह, मनोनिग्रह के द्वारा आत्म-विजय प्राप्त कर लेगा, उसी मात्रा में वह निद्रा को जीत सकेगा। रामायण की उक्ति है कि श्री लक्ष्मण जी भी अप्रतिम रूप में निद्राजित थे।

अपने व्यक्तिगत प्रलोभनों, आशाओं और इच्छाओं से ऊपर उठने के लिये आत्म-विजय पाना परमावश्यक है। इस प्रकार आत्म-विरक्ति अथवा आत्म-विजयी व्यक्ति अपने जीवन की शक्तियों का उपयोग सत्य पर आधारित सिद्धान्तों को अनुसरण के लिये करता है तो वह श्रेष्ठ मानव है। ऐसे मानव रत्न को मानव की श्रेष्ठ निधि 'आत्म-बल' सुलभ हो जाती है। आत्म-बल व नैतिक बल के आधार पर वह चमत्कार कर दिखाता है। ऐसा महामानव अपने शरीर, इन्द्रिय-ग्राम और मन को पूर्ण अधिकार में रखता है। यह आत्म-विजयी मानव पूर्ण निद्राजित होता है। अखिल लोक-पावन भगवान् श्री कृष्णजी ने अर्जुन को 'गुडाकेश' उपाधि प्रदान कर विशिष्ट सम्मान दिया।

मोह-त्याग की महिमा अद्भुत है। मोह ही भय एवं दुःख का प्रधान कारण है तथा मोह-त्याग असीम बल का जनक है। मोह एक मिथ्या कल्पना है। यह शरीर की ममता से प्रारम्भ होता है। हम कुटुम्ब, जाति आदि के प्रति संकीर्ण होते जाते हैं। दूसरों की मूल्यवान् वस्तुओं के नष्ट होने पर, दूसरों के कुटुम्ब में मृत्यु होनेपर हमें दुःख नहीं होता है किन्तु अपनी साधारण वस्तु के नष्ट होने पर हमें दुःख आघात होता है क्योंकि उनमें हमारा ममत्व है। दुःख का कारण वस्तुनाश अथवा देहनाश नहीं है बल्कि उनके प्रति हमारा मोह है मोह से ही आशंका, चिन्ता और भय उत्पन्न होते हैं। मोह के कारण ही स्वकीय परकीय संकीर्ण भेद होने पर घृणा और क्रोध उत्पन्न होते हैं जिनसे मन असन्तुलित हो जाता है। मोह से कर्म की प्रेरणा लेना स्वस्थ नहीं हो सकता। कर्तव्य भावना से ही कर्म की प्रेरणा लेना उचित होता है। मोह के स्थान पर स्वस्थ प्रेम रखने से अभय भावना का उदय होता है।

यथार्थ तो यह है कि 'अहं भाव' के विकृत होने पर तथा उस-उस विकृति को पुष्ट करते रहने पर मोह बढ़ता चला जाता है। 'अहं' से ही ममत्व पैदा होता है। धन सम्पत्ति, सत्ता, यश आदि को अपना मानकर उनके लिये सिद्धान्त एवं सत्य का मार्ग छोड़ कर भी लड़ते रहने से हम अपने 'अहं' के मिथ्या रूप को पुष्ट करते रहते हैं। 'अहं' का मोह से गहरा सम्बन्ध है। यों कहिये कि मोह का मूल भूत 'अहं' ही है। किसी के

अहं शब्द सुनकर हमारे अहं को ही चोट लगती है और हम क्रुद्ध हो जाते हैं। घृणा एवं क्रोध का उदय अहंभाव की टकराहट से ही होता है। 'अहं' को उदात्त करने से मोह घटता है तथा जीवन स्वच्छ एवं स्वस्थ हो जाता है। अपने 'अहंभाव' को धन, सम्पत्ति, सत्ता, पद, यश के आधार पर विकसित न करके,सत्य के आधार पर पुष्पित एवं पल्लवित करना चाहिये। तभी हम व्यक्तिगत इच्छा, आशा और निराशा से ऊपर उठकर उदारता के सिद्धान्तों के लिये जीना और मरना सीख सकते हैं और तभी जीवन का सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है।

स्वामित्व की भावना से मोह उत्पन्न होता है। किन्तु स्वामित्व तो एक मिथ्या भ्रम है। यदि शरीर ही मेरा नहीं है और छूट जाता है तो अन्य वस्तुओं एवं व्यक्तियों में ममत्व नितान्त निराधार है।

वर्णविभेद नामक जो अज्ञान है, इससे मोह की उत्पत्ति होती है। मोह से तीन गुण उत्पन्न होते हैं वे तीनों गुण हैं सत्व, रज और तम। ऐसा भगवान शंकर ने अपने मुखारविन्द से कहा है। यहाँ पर आचार्य शंकर विषयक संक्षिप्त कथा उल्लेखित है।

आचार्य शंकर उषा काल में गंगा स्नान के लिये जा रहे थे। आचार्य जी जब दशाश्वमेध घाट के पास पहुँचे, तो आचार्य शंकर के सामने एक श्वपच अपने हाथ में झाडू लिये और बगल में अपने कुत्ते को लिये बीच मार्गमें ही खड़ा था। श्वपचके कारण वह मार्ग अवरुद्ध हो गया था। श्वपच जब बहुत देर तक मार्ग से नहीं हटा तो आचार्य ने उससे मार्ग छोड़ कर हट जाने के लिये आदेश युक्त शब्दोंमें कहा। श्वपच ने अतिनम्रता से कहा, महात्मन्! मार्ग तो अवरुद्ध नहीं है, कृपया बगल से चले जाइये।' आचार्य शंकर पुनः उसी आदेश युक्त शब्द में बोले, 'श्वपच। तुम बीच मार्ग में खड़े हो। मैं कैसे चला जाऊँ? तुम्हारा स्पर्श हो जायगा तुम अपवित्र हो, और तुम्हारे स्पर्श से मेरा शरीर अपवित्र हो जायगा।'

श्वपच को मानो अपने अभीष्ट की प्राप्ति हो गयी। और वह प्रसन्न मुद्रा में पुनः बोला–स्वामिन्! मेरे स्पर्श से आपके शरीर में क्या हो जायगा? मानव का शरीर आपका भी है और मेरा भी। मानव के शरीर से मानव का स्पर्श होने से क्या हो सकता है? आपकी बात मेरी समझ में नहीं आयी। आप मुझे यहाँ से हटने के लिये क्यों कह रहे हैं?' आचार्य शंकर अपने भावों को पुनः व्यक्त करते हुये बोले, श्वपच! तुम्हारा शरीर श्वपच का है और मेरा शरीर संन्यासी का तुम्हारे शरीर के स्पर्श से मेरा शरीर अपवित्र हो जायगा। अतः मार्ग छोड़ दो।' श्वपच पहले ही से स्वामीजी से कुछ पूछने के लिये और कुछ कहने के लिये तैयार था। आचार्य शंकर से दृढ़ता पूर्वक श्वपच अपनी बात जिज्ञासु

बनकर पूछने लगा। 'महाराज! पवित्रता अपवित्रता, ऊँच, नीच, श्रेष्ठ, लघु ब्राह्मण और श्वपच आदि भेद तो बाहरी दिखावा मात्र है। आप तो मायावाद के विरोधी हैं, आप तो अद्वैतवाद के संचालक हैं। आप पुनः मायावाद के चक्कर में क्यों पड़ रहे हैं? आप तो संसार को मायावाद से छुड़ाने के लिये आये हैं, जान पड़ता है अभी आपको मायावाद से छुटकारा नहीं मिला? यदि आप स्वयं मायावाद के चक्कर में फँसे रहेंगे तो अन्य लोग इससे कैसे उबर पायेंगे?'

आचार्य शंकर श्वपच की बातें सुनकर कुछ सोचने लगे और पुनः उसे अपने उपदेश द्वारा समझाने का प्रयत्न करने लगे। आचार्य जी को अपनी विद्वता पर भरोसा था। अपनी प्रतिभा पर विश्वास था। आचार्य ने श्वपच से पुनः कहा—'आध्यात्मिक और लौकिक बातों में अन्तर होता है। तुम आध्यात्मिक बातें कर रहे हो मैं तुमको लौकिक बातें बता रहा हूं। तुम अपने हाथ में झाड़ू लिये हो और साथ में कुत्ता भी लिये हो। ये दोनों अशुद्ध तत्त्व हैं। मैं भी लौकिकता के कारण तुम से स्पर्शास्पर्श की बातें कर रहा हूं। अतः मार्ग छोड़ कर हट जाओ और मुझे गंगा-स्नान को जाने दो।'

श्वपच तो जानबूझ कर मार्ग रोके रहा। और पुनः बोला—'अभी आपको मायावाद से भी छुटकारा नहीं मिला आपके शारीरिक लक्षणों से जान पड़ता है कि आप कोई दिव्य रूप धारण किये कोई महापुरुष हैं। यह सब होते हुए आपका यह उपदेश नहीं समझ में आता कि मैं मार्ग रोके हूं? आप तो कर्म से भी संन्यासी हैं। आपसे कुछ उपदेश की बातें करना असंगति ही होगी। आप ईश्वर और जीव के बीच माया को आश्रय देना चाहते हैं? आपकी बातें बहुत ही विचित्र और आपके सिद्धान्त के प्रतिकूल हैं। आप तो लोक-कल्याण के लिये संसार में आये हैं और धर्म के उद्धारक हैं।'

श्वपच की बातें सुनकर आचार्य शंकर अधिकाधिक आश्चर्य में पड़ गये। आचार्य को यह प्रतीत होने लगा कि यह जन ज्ञानी है और हो सकता है ब्रह्मज्ञानी भी हो, और यह विचार आते ही आचार्य शंकर श्वपच से बोले—'श्वपच! तुम नीच कुल सम्भव भले ही हो किन्तु तुम ज्ञानी हो। तुमको यह भी ज्ञान है कि वर्ण-विभेद मानव-जाति का स्वाभाविक विधान बन गया है। यह मानव समाज वर्ण-भेद के आधार पर ही अपने कर्म का निर्णय करके विभाजित हो गया। ब्राह्मण अपने कर्म के आधार पर ही श्वपच से अत्यधिक महान् है, और श्वपच अपने कर्म के आधार पर ही नीच माना जाता है। कर्म के अनुसार ही जातियों में शक्ति की वृद्धि और ह्रास होता रहा है।'

आचार्य शंकर की बातें सुनकर श्वपच अट्टहास करके हंसा और बोला, 'आचार्य चरण ! आपने वंशीय परम्परा के अनुसार जो बातें की उसे सुनकर आश्चर्य हो रहा है। केवल वंश में उत्पन्न होने से कोई मनुष्य श्रेष्ठ नहीं हो सकता। सद्गुण ही मानव में श्रेष्ठता ला सकते हैं। चाहे कोई उच्च कुल में उत्पन्न क्यों न हो, उसमें श्रेष्ठता नहीं आ सकती, जब तक उसके कर्म ठीक न हों, बिना सत्कर्म के मानव श्रेष्ठ नहीं बन सकता। यदि कोई जाति परम्परा के अनुसार अपने को श्रेष्ठ समझता है, तो वह उसकी भूल ही होगी।'

श्वपच की बातें सुनकर आचार्य शंकर बहुत प्रभावित हुये। श्वपच की ओर उनका ध्यान पूरी तरह से आकृष्ट हो गया। उसके प्रति आचार्य शंकर के मन में स्नेह बढ़ने लगा और श्वपच आगे कहता ही गया, 'महात्मन् ! विद्या पढ़ने मात्रसे कोई विज्ञ नहीं हो सकता, विद्या प्रकृति ज्ञान का कारण नहीं बन सकती। बिना प्रकृति ज्ञान के मानव ज्ञानी नहीं हो सकता। विशिष्ट कुल में जन्म मात्र से विशिष्टता नहीं आती। पण्डित वही कहा जाता है जो समदर्शी हो। समदर्शी वही है जो समान भाव रखता है। समदर्शी को ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और श्वपच में कोई भेद नहीं होता।'

आचार्य शंकर ने कहा-श्वपच देहधारी महामानव ! तुम्हारा ज्ञान महा विशाल है। तुम्हारे ज्ञान को पहिचान तो सर्व साधारण नहीं कर सकते। श्वपच ने पुनः कहा, 'आचार्य वर ! वहां विभेद नामक जो अज्ञान है, इससे मोह की ही उत्पत्ति होती है। मोह से तीन गुण उत्पन्न होते हैं। वे तीनों गुण है सत्व, रज, और तम। आप तो गुणातीत है, गुणों में आबद्ध नहीं हो पाते, मन, मोह, माया से परे रहते हैं। अतः आपको किसी मानव के उच्च या नीच कुल की बात नहीं करनी है।'

श्वपच की बातें गम्भीर होती गयी और इधर आचार्य शंकर ने समाधि में देखा कि वहाँ पर स्वयं भगवान् शंकर श्वपच के रूप में पधारे है। आचार्य ने भगवान् शंकर का दर्शन पाकर जब अपनी समाधि भंग की तो न वहाँ पर श्वपच ही रहा और न उसका कुत्ता ही।

अब पुनः मुख्य विषय पर आते हुये, हम सभी को अपना कर्त्तव्य पालन करना चाहिए किन्तु मोह त्यागकर। हम कर्म के समय पुरुषार्थ करें और फल प्राप्ति के समय संतोष ग्रहण करें। जीवन के पुरुषार्थ और संतोष का समन्वय होना श्रेयस्कर है। मिथ्या, दंभ के आधार पर कृत्रिमता अपनाकर झूठे स्तर पर जीवन यापन करना क्लेशकारक ही सिद्ध होता है। उदार भाव से मानवता को अपनाकर परमात्मा की कृपा पर दृढ़ विश्वास करने से असीम शांति और सबल प्राप्त होते है। मानव उस परमात्मा की कृपा से काल, कर्म और स्वभाव इन अजेय तत्वों पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। ईश्वर का अनुग्रह होने पर ये तीनों अनुकूल हो जाते हैं।

मन पर निग्रह करने के लिये एवं मन को मोह विमुक्त करने के लिये अचेतन मन की सहायता लेना आवश्यक है। हमारा चेतन मन जिन विचारों को प्रतिपादित करता है, वे गहरे अचेतन मन में उतर कर हमारे अङ्ग बन जाते हैं और भविष्य में हमारा पथ प्रदर्शन करते हैं। इसी लिये पहिले चेतन मन में सुन्दर स्वास्थ्य आत्म विश्वास, उदारता, प्रेम, प्रसन्नता आदि की स्थापना करनी चाहिये, जिससे धीरे-धीरे अचेतन मन उसे स्वीकार कर ले। प्रसुप्त शक्तियों को जाग्रत करने के लिये और जीवन में स्वस्थता तथा प्रसन्नता की ओर मुड़ने के लिये विध्वंसात्मक, निषधात्मक, विचारों को छोड़ कर सुन्दर एवं कल्याणकारी विचारों पर आस्थासहित बढ़ना चाहिये। सात्विकता से साहस एवं प्रसन्नता का उदय होता है। हमारे चेतन मन में विविध प्रकार के अच्छे तथा बुरे विचार आते रहते हैं। हम अपनी छांट के द्वारा उनमें से अच्छे विचारों को अपनाते रहने का प्रयत्न करते रहें।

मौन तथा ध्यान, विचारों को स्वच्छ, स्पष्ट एवं सबल बनाने में सहायक होते हैं। हम दिन भर दूसरों के साथ रह कर दूसरों की बातें सुनते हैं तथा दूसरों के विषय में बातचीत करते रहते हैं। प्रायः नित्य ही हमें एकान्त में बैठ कर कुछ समय अपने साथ भी बिताना चाहिए तथा अपनी बातें सुननी चाहिए और अपने को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये। जीवन को उत्कृष्ट बनाने का संकल्प करना चाहिये तथा प्रयास करना चाहिए। दुखी क्यों रहें ? सुखी बनने का निश्चय करके सुखी बनें। जीवन की सार्थकता अपूर्ण से पूर्ण की ओर नश्वरता से अमरता की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ने में है तथा आत्मा को निर्मल करने में है।

जहाँ राम तहं काम नहिं, जहाँ काम नहि राम।
तुलसी कबहुं होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम॥

असन, बसन, सुत नारि सुख, पापिहुं के घर होय।
सन्त समागम रामधन, तुलसी दुर्लभ दोय॥

आत्मा की खोज

[श्री रामचरन सनाढ्य बी. ए.]

प्रत्येक प्राणी की जीवन-प्रवृत्ति का उद्देश्य यदि एकत्रित कर दिया जाय तो सिद्धान्त बनेगा, 'सुख की प्राप्ति और दुख की निवृत्ति।' इस श्रेणी पर प्राणी तब ही पहुँच सकता है जब उसे किसी प्रकार के दुःख व विक्षेप का लेश न होकर भरपूर परमानन्द प्राप्त हो। यदि 'दुख' पर प्राणी दृष्टि डालता है तटस्थ होकर तो दुख विभाजित हो जाता है दो टुकड़ों में। शारीरिक तथा मानसिक। शरीर या मन की स्थिति से अपनी 'ज्ञान इन्द्रियों की धारों को 'बलात्कार हटाने' का या उन धारों की रुकावट का जो अनुभव प्राणी को होता है वह ही दुःख संज्ञा है। इसी दृष्टिकोण की पूरक सन्मुख अवस्था जब शरीर या मन की स्थिति से अपनी 'ज्ञान इन्द्रियों की धारां के सिमटाव' या 'एकाग्रता' का जो अनुभव है प्राणी उसे 'सुख' मानता है। इस अनुभव पर विचार या चिन्तन करने के साधन या करण या श्रोजार को 'मन' कहते हैं। इस प्रकार आत्मा या जीवन शक्ति Sprit entity प्राण शक्ति या चेतन शक्ति अथवा 'सार-अंश' का एक केन्द्र है जो शारीरिक तथा मानसिक स्थलों पर धारायें भेज कर उनको जीवन देता है और जिन के पुनः लौट जाने पर (वापस खिंच जाने पर) वे स्थल निर्जीव हो जाते हैं। बेकार हो जाते हैं। ऐसा उस का 'स्व-भाव' है, धर्म है। इस के द्वारा ही चेतन हो जाते हैं शरीर इन्द्रियां इत्यादि। इसलिये चेतन शब्द प्रयोग किया जा सकता है इसी शक्ति के लिये।

स्थूल शरीर छोड़ने पर 'आत्मा' सबसे पहिले तेजोमय (अणु-रूप) सूक्ष्म शरीर धारण करती है। इसी को कहते हैं (Astral body) कामनायें वासनाओं की पूर्ति के लिये, विभिन्न शरीरों में लिये फिरती हैं इस बेचारी आत्मा को। जीव को सुख-दुःख जैसे अनुभव प्रेत योनि में भी होते हैं। आकाशिक देहधारी जीव स्थूल देह को व्यापने वाली गर्मी-सर्दी किंचित् भी अनुभव नहीं करते। जैसे किसी पदार्थ में जलने वाले मसाले के परमाणुओं के अन्दर जो विशिष्ट ताप या प्राकृतिक ऊर्जा मौजूद है वही प्रकट होने वाली अग्नि का गुप्त भंडार है। इसी प्रकार इस आत्मा का (चेतन शक्ति का) भी इस रचना में कहीं पर गुप्त भंडार होना चाहिये। इस पृथ्वी पर गर्मी तथा प्रकाश जैसी शक्तियां ऊँची श्रेणी के भण्डारों से आ रही हैं। इसी प्रकार सिद्ध है कि (चेतना शक्ति) को धारण किये हुये, आकाशिक देह धारी, तेजोमय, अणु रूप जीव भी ज्ञान इन्द्रियों की गम्य से परे के सूक्ष्म मंडलों से उतर कर आये हैं। यह चेतन शक्ति (आत्मा) प्राकृतिक शक्तियों के मिलन

का परिणाम नहीं है। इस आत्मा के चार गुण देखने में आते हैं:—

१. ज्ञान अर्जन
२. सुख तथा दुख का अनुभव
३. विचार पूर्वक मानसिक क्रियायें करना।
४. शक्ति-प्रदर्शन

यह चारों गुण अशरीर-प्रेत योनियों में भी दिखाई पड़ते हैं। मूर्छा की दशा में, अथवा स्थूल शरीर की मृत्यु की दशा में शरीर का पर्दा बिल्कुल अलग हो जाता है। बेकार निर्जीव सा पड़ा रहता है। समाधि में स्थूल देह की क्रियायें बन्द होने के कारण ज्ञान अर्जन शक्ति अधिक बढ़ जाती है, इससे प्रतीत होता है कि शरीर-कोश दूर हो जाने पर भी शक्तियां बनी रहती हैं, अतः परिणाम निकलता है कि प्राकृतिक शक्तियाँ तो कोश रूप उपाधि (शरीर की मोजूदगी) में प्रकट होती हैं। तथा कोश के अभाव में लोप हो जाती हैं किन्तु आत्मा के गुण, शरीर कोश से संबन्ध हट जाने पर भी उपस्थित रहते हैं। बल्कि अधिक बढ़ जाते हैं। यदि आत्मा के स्थूल-सूक्ष्म तथा कारण रूप शरीर-कोश पूर्ण तथा हटा दिये जाय तो वह आत्मा, इस दशा में, आदि शक्ति ज्ञान तथा आनन्द का स्रोत ही प्रतीत होगी।

यदि मेरी यह दलीलें सही हैं तो यह भी सत्य है कि प्रकृति की सब शक्तियों का अस्तित्व चेतन शक्ति (आत्मा) के आधार पर निर्भर है। जब तक आत्मा का किसी देह में निवास रहता है तभी तक सब तत्व प्राकृ- शक्तियाँ परस्पर मेल से काम करती हैं अन्यथा आत्मा के अलहदा हो जाने पर तोड़-फोड़ की कार्यवाही शुरू होने लगती है और वे सभी तत्व तथा शक्तियाँ अपने-अपने स्थान भंडार पर लौट जाती हैं।

ध्यान दीजिये। बिजली की शक्ति किसी कोश या पर्दे के द्वारा ही प्रकाश करती या व्यक्त होती है। और इस पर्दे के अभाव में लोप हो जाती है। नष्ट नहीं होती। इसके संबन्ध में यह मानना ही होगा, कि एक स्थल तो ऐसा है कि जहाँ से उतर कर यह शक्ति आकर काम करती है तथा दूसरा स्थल वह जिस पर उतर कर कार्य करती है। बिजली की गुप्त तथा प्रकट दोनों अवस्थायें देखने में आती हैं। इस लिये दोनों 'स्थल' अलग-अलग मानने होंगे। और वे एक दूसरे से संबंधित भी होंगे। एक स्थल सघन होगा। तो दूसरा स्थल विरल होगा। एक धन (+) होगा तो दूसरा ऋण (—) होगा। इस प्रकार इस आत्मा के भी सघन और विरल दो स्थल बन जाते हैं। सघन में वह व्यक्त होती है तथा विरल में लोप होती प्रतीत होती है।

आत्मा सत्, चित् और आनन्द रूप है उस का भण्डार चेतन भंडार, परम सत्ता, परमज्ञान और परम आनन्द रूप 'कुल' मेरे मालिक का धाम है। रचना का हाल जान ने और उसके भिन्न-भिन्न भागों का वितरण समझने और परमानन्द का धाम खोजने के लिये सबसे सरल और असली तरीका मनुष्य

शरीर का भेद मालूम करना ही है। क्योंकि यह शरीर समस्त रचनाओं का एक छोटा सा (माडल) प्रतीक है। मनुष्य की बुद्धि सामान्यतया तोल नाप (लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई) वाली वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करती है।

इस रचना में ऐसे मण्डल मौजूद हैं जो दृष्टि-गोचर लोकों से कहीं अधिक विम्वार वाले और मूक्ष्म हैं। उनका निम्न स्थल, मनुष्य शरीर में मौजूद है। चेतन शक्ति (Prime Energy) ही इस चेतना में प्रधान शक्ति है और वही आदि शक्ति है। आदि शक्ति ही परमात्मा है, आत्मा का आधार है। आत्मा वास्तव में आदि शक्ति की किरण है। जिस प्रकार शरीर में मस्तिष्क के भीतर चेतना का केन्द्र है इसी प्रकार पूरे ब्रह्माण्ड में भी आदि शक्ति का केन्द्र है। वही परमधाम है। उस सहज प्रकाश परमात्मा की किरणें समस्त शरीरों में फैली हुई हैं परम धाम मन तथा माया के मण्डलों से भरे हैं। और जैसे आकाश में कोई बादल का टुकड़ा आ जाय तो वह आकाश की अनन्तता और अपारता को मिटा नहीं सकता। इसी प्रकार समस्त संसार भी परमात्मा की अनन्तता और अपारता को खण्डित नहीं कर सकता। आत्मा जब परमात्मा के परम धाम में निमग्न रहती है परमानन्द प्राप्त करती है जब चेतन शक्ति (आत्मा) की धार किसी स्थान पर एकत्र होकर केन्द्र (Focus) बनाती है तो उस स्थल की दशा आदि भण्डार की दशा से मिलती जुलवी होती है। यदि व्यक्त करने वाले पर्दे में कोई रुकावट न हो तो समता पूर्ण रूप से होगी। जैसा आतिशी शीशे द्वारा मूर्य की किरणें एक केन्द्र बनाती हैं। उस बिन्दु की दशा 'सूर्य' से मिलती जुलती होती है। परन्तु इस स्थूल सृष्टि का पर्दा तुच्छ होने के कारण सर्वथा पाना दुलर्भ होता है। परन्तु मनुष्य शरीर में चेतन भण्डार की बहुत कुछ नकल देखने में आती है। इसलिये पूर्ण सृष्टि को समझने के लिये मनुष्य शरीर को समझना अत्यन्त आवश्यक है। और चेतन प्रकाश भण्डार से आये हुये किरण रूपी आत्मा अंश को जानना तो अति ही आवश्यक प्रतीत होता है।

आइये, चलें, खोजें:—

मनुष्य योनि को तीन—भागों में बांटा जा सकता है।

१. बाहरी जामा (शरीर)

२. अन्तःकरण की चार वृत्तियाँ (मन+बुद्धि+चित्+अहंकार)

३. चेतन शक्ति (आत्मा)

(१) बाहरी जामा या शरीर भी निम्न उपभागों में विभाजित है।

१—मूला धार (गुदा चक्र)

२—संतान उत्पन्न करने वाला (इन्द्रिय चक्र)

३—पाचन करने वाला (नाभि चक्र)

४—रुधिर संचारक (हृदय चक्र)

५– प्राण संचालक (कण्ठ चक्र)

६– आत्मा की बैठक (आज्ञा चक्र)

(२) अन्तःकरण की वृत्तियां (धारायें)

१– अन्तर्मुखी धार	(२) बहिर्मुखी धार
(आत्मा की वृत्ति)	(आत्मा के आश्रित)
जिस का कार्य	जिस का कार्य
पोषात्मक तथा	शरीर से मल-मूत्र निकालना
रचनात्मक (स्नायु द्वारा)	संहारात्मक (स्नायु द्वारा)

नोट– इन दोनों प्रकार की धाराओं (वृत्तियों) के मिल कर काम करने से बाहरी जामा (शरीर छः भाग या चक्र में विभाजित हो गया।

(३) चेतन-आत्मा जो बाहरी जामा (शरीर) तथा अन्तःकरण का समन्वय करता है। संचालन करता है।

इसी प्रकार पूरे ब्रह्माण्ड में भी छः स्थान हैं। ब्रह्म या ब्रह्माण्डी मन का अण्डाकार देश (Region) है। इस ब्रह्माण्ड देश में परब्रह्म पद अर्थात् ब्रह्म से परे का मण्डल भी शामिल है। पद देश (Region) को ही कहते हैं। ब्रह्माण्ड देश में ब्रह्माण्डी मन Universal mind से मिला हुआ आत्मा का भारी केन्द्र है, जिसे परब्रह्म पद कहते हैं।

पिण्ड में 'मन' तथा ब्रह्माण्ड में ब्रह्माण्डी मन काम करता है। ब्रह्माण्डी मन का देश भी छः भागों में विभाजित है। चक्रों के स्थान पर जो रगों के केन्द्र हैं (Nerve-Centres) वे सब स्थूल मसाले के बने हैं। अविद्युत या भौतिक है। परन्तु शक्ति के केन्द्र (Force-Centres) जो उन चक्रों से संबंधित हैं, अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वों से बने हैं। और उनका सम्बन्ध अपने-अपने सम्बन्धी सूक्ष्म मण्डलों से रहता है जो आत्मा के केन्द्र हैं वे आत्मा के बड़े भारी केन्द्र से मिले हुये हैं। इस ब्रह्माण्डी मन से मिला हुआ, आत्मा का बड़ा भारी केन्द्र है, जिस की सहायता से ब्रह्माण्डी मन, ब्रह्माण्ड को संभाल करता है। वेदान्ती लोग इसे (नेति-नेति) कहकर बताते हैं। सन्त मत में इसे ही परब्रह्म-पद कहते हैं। यह पद ब्रह्माण्डी मन से इसी प्रकार अलहदा है जैसा कि हमारी आत्मा का केन्द्र हमारे मन से अलग है। इन दोनों का आपसी संबंध भी उसी प्रकार है जैसा कि हमारी आत्मा का संबन्ध हमारे मन के साथ है।

(अ) [ब्रह्माण्ड देश] के तीन ऊपरी स्थान हैं:–

१- शून्य (इसी को अक्षर कहते हैं इसका धनी पुरुष अक्षर से शक्ति पाकर प्रकृति (रचना) करता है)।

२- त्रिकुटी (इसके धनी को ब्रह्म कहते हैं)।

३- सहस्रदल-कमल (जिसके धनी को निरंजन कहते हैं)।

(आ) ब्रह्म के तीन रूप :—

१- अव्याकृत जो शून्य में है।

२- हिरण्य गर्भ जो त्रिकुटी में है।

३- विराट जो सहस्र दल कमल में है।

इसी प्रकार आत्मा के भी तीन रूप होते हैं:—

(१) हृदय में विश्व (२) कण्ठ में तेजस तथा (३) आज्ञा चक्र में प्रज्ञा। सुषुप्ति अवस्था में आत्मा का तीसरा रूप (प्रज्ञा) प्रकट नहीं होता। वह अव्याकृत से मिलता-जुलता है। स्वप्न में (कण्ठ) तेजस और जाग्रत में आत्मा को विश्व रूप कहा जाता है।

आत्मा जो आती है उतर कर तथा उस को बैठक का स्थान जीव के इन रूपों से बिलकुल अलहदा है। इन रूपों में सत्ता उन्हीं की उन्हीं से आती है। ब्रह्माण्डी मन के देश के नीचे के स्थान सत्त्व, रज और तमोगुण के हैं। तमोगुण का काम मल को निकालना है। इसी को शिव कहा गया है और यह संहार शक्ति का केन्द्र है। रजोगुण का काम भौतिक तत्त्वों को संचित कर के उत्पत्ति करना है। इसी को ब्रह्मा कहा गया है। सत्त्वगुण का काम पालन-पोषण करना है। इसी को विष्णु कहते हैं।

चेतन शक्ति (आत्मा) की क्रिया अन्तर्मुखी तथा आकर्षक है। उस के व्यक्त होने पर अन्तर्मुखी आनन्द की ओर आत्मा खिचती रहती है। यह स्वाध्याय द्वारा पहिचानी जाती है। भौतिक दृष्टिकोण से आत्मा को चार प्रकार का (संस्कारानुसार) माना जाता है:—

१– जाग्रत आत्मा (पहिचान)
(मानव) १– सर ऊपर की दिशा में
२– सुख-दुःख का भान
३– भविष्य निर्माण

२– अर्ध जाग्रत आत्मा (पहिचान)
(पशु-पक्षी) १– सर सामने की दिशा में
२– सुख-दुःख का भान
३– (भविष्य-निर्माण नहीं

३– सुप्त-आत्मा (पहिचान)
(वनस्पति) १– सर नीचे की ओर-(अधोमुखी)
२– (सुख-दुःखका भान नहीं)
३– (भविष्य निर्माण नहीं)

४– घन सुषुप्त आत्मा
१– (सर है ही नहीं)
२– (सुख-दुःखका भान नहीं)
३– (भविष्य निर्माण नहीं)

धातुयें तथा पत्थर आदि इस श्रेणी में आते हैं।

पूर्णयोग

[श्रीमती प्रेमवती शर्मा, एम. ए., बी. एड. (दतिया)]

'योग' शब्द आधुनिक जगत में अत्यन्त व्यापक अर्थों में प्रयुक्त हो रहा है। सन्दर्भ की विभिन्नता से अर्थ में भेद होना तो स्वाभाविक है ही परन्तु एक ही सन्दर्भ में अनेक व्यक्ति इस 'योग' शब्द को अनेक अर्थों में प्रयुक्त कर रहे हैं। कोई भस्म रमाने की ओर हठ यौगिक बाह्य शारीरिक चेष्टाओं को ही योग समझता है और सद्गृहस्थों के लिए योग को असम्बन्धित मार्ग बतलाता है; तो कोई योग को मानसिक चिन्तन तक ही सीमित रखकर सहजयोग का नाम देता है योग की एक-एक क्रिया को लेकर अनेक विशेषणों का प्रयोग हो रहा है जैसे लय योग, तारक योग, सहज योग, राजयोग, बिन्दुयोग, हठ योग, सिद्धयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग कर्म-संन्यास योग आदि।

वस्तुस्थिति यह है कि प्रत्येक वस्तु के दो रूप होते हैं। एक आन्तरिक और दूसरा बाह्य। राजयोग मन को एकाग्रता की ओर इंगित करता है और चित्त वृत्तियों के निरोध की चेष्टा से आरम्भ होता है। यह चेष्टा आन्तरिक है और बाह्यमुद्रायें इसी आन्तरिक चेष्टा के परिणाम हैं। मानसिक जगत के बदलते ही बाह्य दुनिया के प्रति दृष्टिकोण बदल जाता है और शारीरिक चेष्टायें भी तदनुकूल हो जाती हैं। इसके विपरीत हठयोग शरीर और प्राण पर नियन्त्रण करने के उपरान्त चित्त वृत्ति निरोध को परिणामतः प्राप्त करता है। यह चेष्टा बाह्य है। और चित्त वृत्ति निरोध इसी चेष्टा का परिणाम है। स्वभाव के अनुसार साधक इन दोनों में से कोई एक मार्ग अपना लेता है। प्रश्न उठता है कि ब्रह्मानन्द का रसास्वादन करने के लिए क्या ये शुष्क चेष्टाएं फलदायी हो सकती हैं? जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य होता है। जैसा कार्य होता है वैसा ही परिणाम होता है। तो इन सब चेष्टाओं और कठोर साधनाओं से सिद्धियों का योग-ऐश्वर्य प्राप्त होना भले ही सम्भव हो पर आनन्द प्राप्ति का लक्ष्य इन चेष्टाओं से नहीं मिल सकता, तो उत्तर है कि आनन्द प्राप्ति के लिए पूर्णयोग ही सक्षम है। यह पूर्णयोग क्या है? यह पूर्णयोग वह क्रिया योग है जिसमें सब कुछ आ जाता है।

तपः स्वाध्याय ईश्वर-
प्रणिधानानि क्रियायोगः।

—साधन पाद

महर्षि पातञ्जलि ने इस क्रिया योग को दो दृष्टि कोणों से पुष्ट किया है। प्रथम यह समाधि की भावना लाने में सक्षम है और द्वितीय यह क्लेशों को क्षीण करता है।

समाधि भावनार्थः
क्लेश तनूकरणार्थश्च।

—साधन पाद

क्लेशों को क्षीण करने और समाधि स्थिति लाने के लिए तप और स्वाध्याय बाह्य और आन्तरिक दोनों होने से बाह्यरूप से लक्ष्य किये भी जा सकते हैं। परन्तु ईश्वर प्रणिधान तो बिल्कुल मन बुद्धि का विषय है। और इसी में योग की पूर्णता है। यही पूर्ण योग है। जिस तक मन पहुँच नहीं सकता बुद्धि जहाँ काम नहीं करती उसी लक्ष्य को, स्वरूप स्थिति को, पाने के लिए ईश्वर प्रणिधान एक मात्र सूक्ष्म मार्ग है। यही पूर्णयोग है।

ईश्वर प्रणिधान ही पूर्णयोग क्यों है? इसलिए कि उस पूर्ण ईश्वर में से यदि पूर्ण निकाल लिया जाय तो वह फिर भी पूर्ण ही रहता है शून्य नहीं होता। ऐसे पूर्ण परमेश्वर को समर्पित हुए बिना हम उसके निरन्तर सन्निकट रहने का आभास किस तरह से पा सकते हैं? मन बुद्धि से आगे के सत्य को पाने के लिए तो मन बुद्धि को उसी पूर्ण परमेश्वर के चरणों में बिल्कुल छोड़ ही देना होगा। उसे छोड़ते ही आगे का सत्य जगमगा उठेगा। यह मन, इसकी सब कल्पनाएं वासनाएँ, इच्छाएं तथा आकांक्षाएं समर्पित करनी होंगी। यह बुद्धि, इसके सब विचार इसकी सारी चमत्कारी और वैभव एकदम समर्पित कर देने होंगे। अपना कहने के लिए एक रत्ती भर भी बचा कर नहीं रखना होगा। सभी तो उसे दे देना होगा। अपने अहं भाव को बिल्कुल ही भूल जाना होगा। एक क्षण भर भी समर्पित हुए बिना रहा कि काम रुका रहा। पूर्ण समर्पण ही पूर्ण योग है। ऐसा किये बिना काम चलेगा नहीं। प्रश्न उठता है कि तब संसार का काम चलेगा कैसे? कर्म कैसे कर सकोगे? तो उत्तर है ईश्वर बुद्धि से। उसी बुद्धि से जो उसे समर्पित हो चुकी है।

बचपन में एक कहानी पढ़ी थी। एक गड़रिया था। उसके पास सौ भेड़ें थीं। वह नित्य उन्हें चराने ले जाता था। उनमें से एक दिन एक भेड़ खोगई। गड़रिया बड़ा दुखी हुआ। खोजता रहा, खोजता रहा जब न मिली तो रोने लगा। उसे रोते देख कर एक साहूकार बोला—'रो मत, मैं तुझे १०० भेड़ों के दाम देता हूं। फिर उन को तू ही चराना। तुझे चराने की मजदूरी ३०) माहवार और दूंगा। गड़रिया प्रसन्न हो गया। उसे बिल्कुल वही काम करना पड़ता था जो पहले वह करता था। ऊपर से १०० भेड़ों का मूल्य मिला और प्रति माह वेतन भी मिला और भेड़ मालिक के समझने से निश्चिन्तता मिली, यह अमूल्य निधि थी। तो क्या हम समस्त सचराचर जगत को और उस परमपिता द्वारा सौंपे हुए अपने कर्मक्षेत्र को ईश्वरार्पित बुद्धि द्वारा संचालित नहीं कर सकते? क्या इस स्थिति में स्वभावतः ही राग-द्वेष कम नहीं हो जायेंगे? ऐसी ही बुद्धि द्वारा किये हुए कर्म कुशलता से

किये जाते हैं। कर्म में कुशलता ही तो योग है। 'योगः कर्मसु कौशलम्' श्रीमद्भगवद्गीता में जगदात्मा श्रीकृष्ण ने बार-बार कहा है— 'मत्कर्मपरमो भव' मेरे लिए कर्म करने वाला बन जा। कोई विशेष कार्य क्षेत्र न हो तो भी नित्य नैमित्तिक कर्मों को भी मेरा ही मान ले।

यत्करोषि यदश्नासि
यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय
तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

जो यज्ञ करे, खाये, करे, दे, देखे उस सभी को मुझे समर्पित कर दे, और तब "नैव पापमवाप्स्यसि" तुझे कोई भी पाप नहीं लगेगा। जब तू ईश्वरार्पित बुद्धि से कर्म करेगा तो तेरी जवाबदारी भी कम हो जायगी। और यही है पूर्ण योग जिसमें समस्त अभ्यान्तरिक और बाह्य चेष्टाओं का स्वतः ही निरोध हो जाता है। ऐसा व्यक्ति करते हुए कुछ नहीं करता। खाते हुए कुछ नहीं खाता। देखते हुए कुछ नहीं देखता वह परमेश्वर के साथ एक हो जाता है। केवल परमेश्वर बुद्धि से कार्य करने से उसका कहीं कुछ न स्वार्थ रह जाता है, न कर्त्तव्य रह जाता है, न उत्तरदायित्व रह जाता है। वह सब काम उसके समझ कर करता है। उसका कहीं कुछ विरोध नहीं रह जाता। कहीं भी उसकी स्वयं की वृत्तियाँ संघर्ष नहीं करतीं। वह हजार को मारकर भी हिंसक नहीं होता। उसकी दृष्टि निरन्तर अपने लक्ष्य पर ही रहती है। ईश्वर किस मार्ग से उसे कहाँ क्या कराने के लिए कब ले जाता है इससे वह न चिन्तित होता है न घबराता है। वह संसार-समर में उसका ईश्वर का एक सैनिक बनकर उसकी इच्छानुकूल युद्ध करता है। यही उसका धर्म है यही उसका कर्म। उसे और कुछ दिखाई ही नहीं देता। उसे तो बस अपना प्राण प्यारा परमेश्वर और उसकी इच्छा के साथ एकाकार हो जाना ही भाता है और वह सब भूल चुका होता है। वह धर्म अधर्म के पचड़े में पड़ता ही नहीं। इसी पूर्णता को देने के लिए जगदात्मा की वाणी गुन्जार रही है :—

सर्वधर्मान् परित्यज्य,
मामेकम् शरणंव्रज।
अहं त्वां सर्व पापेभ्यो,
मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

सब धर्मों को छोड़कर तू मेरी शरण चला आ। मैं तुझे सब पापों से बचा लूँगा, शोक मत कर। इतना आश्वासन देने के बाद फिर झिझक काहे की?

झिझक में ऐ पगले
तुझे क्या मिलेगा?
खुदी को मिटा दे
खुदा जब मिलेगा।

और अगर खुद को मिटाना न भी आता हो तो:—

"मिटाने की खुद को
तमन्ना तो कर,

यूँ दिल के सोना
भी दुश्वार हैं।
कि रहमत के उसकी
बड़े हाथ हैं,
बुला लेगा खुद
उसकी औलाद हैं॥"

हर युग में कोई न कोई ऐसा महामानव आता ही रहता है जो जनसाधारण को सही मार्ग पर डालता रहता है। साधकों और जिज्ञासुओंको स्वर्ण अवसर है हाथसे जाने मत दीजिये। मेरे गुरुदेव पूर्ण योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज बड़े दयालु हैं। यदि आप को समर्पण करना भी नहीं आता तो भी चिन्ता मत कीजिये। बस समर्पण की इच्छा प्रकट कर दीजिये। वे सब सिखा लेंगे। उनके श्रीमुख से निकले हुए शब्द आप की काया पलट कर देंगे और आपको सच्चे मार्ग पर डाल कर परम श्रेयस की ओर ले जायेंगे। पूर्णयोग प्राप्त कराने के लिए पूर्ण गुरु चाहिए न?

पूरन गुरु तब जानिये,
हिय की देवें खोल।
रोम-रोम मेरा कहे,
जय सद्गुरु की बोल॥

स्मरन्ति सुकृतान्येव न वैराणि कृतान्यपि।
सन्तः प्रतिविजानन्तो लब्ध्वा प्रत्ययमात्मनः॥

महात्मा पुरुष अपने अनुभव को सामने रख कर दूसरों के सुख-दुःख को भी अपने समान जानते हुए उनके अच्छे बर्तावों को ही याद रखते हैं, उनके द्वारा किए हुए वैर-विरोध को नहीं।

—महाभारत

साधना

[आयुर्वेदाचार्य श्री पं० रामस्वरूप शास्त्री]
प्रधानाचार्य साधना विद्यापीठ, सफीदों-हरियाणा

साधना हि सर्वं सम्पत् प्रतिष्ठा।

साधना ही सम्पूर्ण सम्पत्तियों को देने वाली है। अर्थात् संसार के यावन्मात्र कार्य साधना द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। इस साधना का मूल सूत्र बीज ओंकार है।

प्रलय के समय समस्त जीवों के संस्कार प्रकृति में और प्रकृति ईश्वराधीन होने से ईश्वर में लीन रहती है। पुनः प्रलय विलीन जीवों के समष्टि संस्कार फलोन्मुख होने से ईश्वर में स्वतः ईक्षण (प्राप्त वस्तु को कार्य में लगाने की इच्छा) होती है। अर्थात् (एकोऽहं बहुस्याम प्रजायेय) मैं एक से अनेक हो जाऊँ, अर्थात् सृष्टि करूँ। उस समय सृष्टि का संकल्प होते ही ईश्वर की अद्वैत सत्ता में त्रिगुण समावेश के अनुसार त्रि-भाव की सत्ता प्रस्फुट होने लगती है। और संकल्प से उत्पन्न प्राण शक्ति की प्रेरणा से प्रकृति में जहां अभी तक सत्त्व, रज, तम की समता थी, विषमता होने लगती है। मूल प्रकृति में कम्पन होते ही शब्द का प्रादुर्भाव होता है। वह शब्द क्या है योगाचार्यों एवं महर्षियों के वचनानुसार वह शब्द प्रणव अर्थात् ओंकार है।

यथा—

कार्यं यत्र विभाव्यते तदखिलं
स्पंदेन सव्यापकम्।
स्पंदश्चापि तथा जगत्सु विदितः
शब्दान्वयी सर्वदा॥
सृष्टिश्चैव तथा दिमाकृति
विशेषत्वाद भूत स्पन्दनी।
शब्दश्चोदभवपरा प्रणव
इत्योंकार रूपः शिवः॥

भावः—

जहां कुछ कार्य है वहां कम्पन अनिवार्य है, जहां कम्पन है वहां शब्द निश्चित है। अतः सृष्टि-रूपी कार्य में साम्यावस्था प्रकृति की सब से प्रथम ध्वनि का नाम ओंकार रूपी शिव है।

इसी आधार को संपुट करते हुए योगाचार्य लिखते हैं:—

साम्यस्य प्रकृतेर्यथैव विदितः
शब्दो महानोमिति।
ब्रह्मादि त्रितयात्मकस्य परमं
रूपं शिवं ब्रह्मणः॥
वैषम्ये प्रकृतेस्तथैव बहुधाः
शब्दाः श्रुताः कालनः।
ते मंत्राः समुपासनार्थम्
भवन् बीजानी ज्ञान्ता तथा॥

भाव—

सत्त्व, रज, तम तीनों की साम्यावस्था में वैषम्य का प्रादुर्भाव होना प्रारम्भ हुआ तब सबसे पूर्व जो हिल्लोल हुआ उस हिल्लोल व स्पन्दन की ध्वनि ही ओंकार है, और उसी प्रकार वैषम्यावस्थापन्न प्रकृति से नाना प्रकार के शब्द उत्पन्न हुए, वही नाना प्रकार के शब्द उपासना के अनेक बीज मंत्र हैं।

इस कारण सृष्टि देव जगत में प्रथम शब्द होने से ॐकार का ईश्वर के साथ वाच्य वाचक संबंध है, अर्थात् ॐकार ही ईश्वर का नाम है। अतः श्रुति स्मृति में इस बीज मंत्र कहा गया है।

सृष्टि त्रिगुण विकार से ही होती है। अतः गुण स्पन्दन द्वारा पंच तत्त्वादि के विकास से जड़ व कारण शरीर में चेतनात्मक जगत् की सृष्टि हुई, और अनेक तत्त्व जरायुज अण्डज उद्भिज और स्वेदज योनियों का विकास हुआ। ज्यों-ज्यों त्रिगुणी प्रकृति की वैषम्यावस्था का विकास होता गया त्यों-त्यों पुनः-पुनः स्पन्दन और पुनः-पुनः शब्द होते गये, और पृथ्वी राज्य में तज्जनित स्तर पर स्तर बनते गये। लोकों, नक्षत्रों, तारों, आदि की भी उत्पत्ति होती गई। और शब्द राज्य में (ध्वनि संसार में) प्रथम नाद ॐकार के विकाररूपी स्वर और व्यञ्जन अनेक अक्षरों की उत्पत्ति हुई, जो देव नागरी वर्णमाला कहलाई। अन्यान्य प्रकृति के स्तरों में अन्य भाषायें और अन्य वर्णमालायें उत्पन्न हुई। भगवान् पतंजलि ने ॐकार को ईश्वर का वाचक कहा है।

तस्य वाचक प्रणवः

तज्जपस्तदर्थ भावनम्।

ॐकार का जप अर्थ भावना के साथ ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में आने वाले विघ्नों का विनाश करता है। ॐकार ही ईश्वर प्राप्ति का बीज मंत्र है यथा—

स्वदेहमरणिं कृत्वा
प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्यानान्निर्मथनाभ्यासा-
देवं पश्येन्निगूढवत्॥
—श्वेता०

अपने देह को नीचे की अरणि (लकड़ी) और प्रणव को ऊपर की अरणि समझकर ध्यान रूपी मंथन से छिपी हुई अग्नि के समान (ज्योतिर्मय प्रभु को) देखो।

प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा
ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं
शरवत्तन्मयो भवेत्॥
—मु० २

प्रणव धनुष है, आत्मा बाण है, उसका लक्ष्य (निशाना) ब्रह्म है। जितेन्द्रिय मनुष्य उसे सावधानी से वेधे। वेधते समय बाण के समान तन्मय हो जाना चाहिये। तभी लक्ष्य की प्राप्ति है।

श्रद्धा विश्वास का युग तो अब गत प्रायः

ही प्रतीत होता है। आज कल इस उच्छृङ्खल तर्क वितर्क कुतर्क के साम्राज्य में श्रुति स्मृति की बातों को हेय समझने वाले समाज को युक्ति संगत व्यवहार्य सिद्धान्तों की आवश्यकता है। ओ ॐकार ही प्रथम नाद है यह त्रिकालदर्शी महर्षियों ने मन को स्थिर कर जो अनुभव किया दर्शन ग्रंथों में मानव समाज के कल्याण के लिए प्रकट किया।

यदि किसी को संशय है तो इस रहस्य को सद्गुरु द्वारा जाने समझे और क्रिया साधना द्वारा स्वयं अनुभव करे।

स्पन्दन निरंतर होता रहता है, यह दो प्रकार का है आकर्षणात्मक एवं विकर्षणात्मक, यह प्रक्रिया क्षण मात्र रुके बिना निरंतर होती रहती है। इसी से इसे जगत (गमनशील) कहते है।

हमारे श्वास प्रश्वास की गति की ओर देखते हुए यह निश्चय होता है कि एक गति नासिका छिद्रों से अंदर को जाती है और फिर उन्हीं द्वारा बाहर आती है। साधक यदि मति स्थिर होकर संयम करे तो प्रकृति के उन-उन स्तरों पर नाद सुन सकेगा। यह नाद ही सर्वलोक हितकारी साधक को उच्च-स्तर पर ले जाने वाला है। साधना करते-करते साधक अपने चरम लक्ष्य प्रभु को प्राप्त कर सकता है। देवं भूत्वा देवं यजेत" के सिद्धान्तानुसार देवता बनकर ही देव की पूजा की जाती है। इसीलिए सर्व तो शुद्ध मनस्क गुरुदेव के उपदेश पर पूर्ण निष्ठावान हो साधक साधना में सफल हो सकेगा। तभी साधना से पूर्ण सम्पत्तियों को देने वाली सिद्धि होगी।

जहाँ बुद्धि है वहीं शान्ति है। भारत ! तुम शान्त हो जाओ जो कुछ हुआ है उसे भूल जाओ पत्थर या लोहे पर कुल्हाड़ी नहीं पड़ती। लोग उसे लकड़ी पर ही चलाते हैं।

—महाभारत

सचित्र योगासन और उनके लाभ

[द्वारा योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा–सवांई]

सचित्र योगासन और उनके लाभ नामक लेख इस वर्ष के 'प्रवेशाङ्क' में प्रकाशित हो चुका है। उसमें बतलाया गया था कि योगासनों का व्यायाम करने वाले साधकों का स्नायु-मंडल बहुत ही निर्मल एवं कोमल हो जाया करता है। अतः स्वास्थ्य–रक्षा के लिए यौगिक व्यायाम अति उत्तम व्यायाम है। जो लोग इनको नित्य नियम से करते हैं उनके स्नायु–मण्डल पर अति-उत्तम प्रभाव पड़ता है, आयु की वृद्धि होती है, मन निर्मल बनता है। चित्त समाधि की ओर बढ़ता है। अतः योगाभ्यासी साधकों को चाहिए कि वे अपने लोक और परलोक के सुख की अभिलाषा लेकर वहाँ अन्यान्य साधनाओं में संलग्न रहा करते हैं वहाँ वे शरीर में वृद्धि और वीर्य बल को व्यापक बनाये रखने के लिए योगासनों का व्यायाम भी नित्य नियम से करते रहें, नीचे कुछ उपयोगी आसन दिये जा रहे हैं। तथा इनके करने की विधि व इनसे होने वाले लाभ भी साथ-साथ लिखे जा रहे हैं।

उत्थित पद्मासन

विधि :—यह आसन बिल्कुल पद्मासन ही है। अन्तर केवल इतना है कि पद्मासन लगाकर पालथी के बराबर अपने दोनों हाथों को जमाकर व पेटको अन्दरको ओर सिकोड़ते हुए अपना शरीर जितना भी अधिक उठाया जा सके उठा दें। छाती को तनाव के साथ बाहर की ओर निकाल कर व सामने देखते हुए करें। इसको करने वाला अपने को झूले की तरह झुला भी सकता है।

समय :— साधारणतः आधे मिनट से प्रारम्भ करके दो मिनट तक किया जा सकता है।

लाभ :—भुजबल की वृद्धि, छाती का विकास, क्षुधा वृद्धि एवं सभी प्रकार के उदर रोगों का नाश करने वाला है।

कुक्कुटासन

पद्मासनं समासाद्य जान्वोरन्तरे।
करौ कर्पूराभ्यां मन्वस्य कुक्कुटासनम्॥

विधि :—पद्मासन लगाकर सीधे बैठने में जंघा स्थान में जहाँ दोनों पैरों के पंजे रखते हैं। उनसे आगे पंजे व पिंडलियों के बीच में अपने हाथों का निकालें व उत्थित पद्मासन की तरह अपने दोनों बाजुओं पर सारे शरीर को तोल दें, जितना हो सके गर्दन को उठा कर छाती को सामने निकाले हुए रखने का प्रयत्न करें। इसी का नाम कुक्कुटासन है।

समय :—अपने शरीर का बलाबल देख कर आधे मिनट से ५ सैकण्ड बढ़ाते हुए दो मिनट तक ले आवें।

फल :—पद्मासन व उत्थित पद्मासन वाले सभी लाभ इसके करने से होते हैं। एक बात विशेष है यदि साधक थोड़ा अश्विनी मुद्रा के ढंग अपनी गुदा आकुंचन व प्रसारण करता रहे, तो पूर्ण आरोग्य देता है एवं स्तम्भन को बढ़ाता है।

॥ कूर्मासन ॥

विधि :—पद्मासन लगाकर पूर्वोक्त विधि से कुक्कुटासन की ही तरह से अपने दोनों जंघा स्थल में रखे हुए पैरों के पंजे व पिंडलियों के बीच थोड़ा रिक्त स्थान रह जाता है। वहीं से अपने दोनों हाथों को अधिक से अधिक मात्रा में पैरों के नीचे से निकाल कर फैला दें एवं अपनी छाती को घुटनों तक बढ़ा कर पट्ठों पर जमा दें व गर्दन जितनी भी उठा सकें उठा कर सामने देखते रहें। इसको कूर्मासन या कच्छपासन कहते हैं।

समय :—प्रायः पूर्वोक्त ही है। २० सैकण्ड से अपने बलाबल को देखकर शुरू करें। व १॥ या २ मिनट तक अभ्यास ले आवें।

लाभ :—उदर के वात विकार नष्ट होते हैं व जठराग्नि बढ़ती है यकृत प्लीहा के रोग शान्त होते हैं।

मत्स्यासन

मुक्त पद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत।
कर्पराभ्यां शिरोवेष्ट्य मत्स्यासनं तुरोगहृत॥

विधिः—अर्थात् मुक्त पद्मासन लगाकर सीधा लेट जाय व अपने दोनों हाथों को कोहनी से आगे के हिस्सों को परस्पर वेकृति करके सिर के नीचे लगा ले यह सर्व रोग नाशक मत्स्यासन है। अथवा अपने दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़कर कोह-नियाँ जमीन में लगाकर पेट और छाती को ऊपर की ओर निकालकर गर्दन को मोड़कर पीछे की ओर उठान देने की प्रणाली भी प्रचलित है। यह मत्स्यासन का रूप सर्व साधारण के अभ्यास के लिए अत्यन्त सरल है। एवं इस आसन को लगाकर शरीर के संतुलन को ध्यान में रखकर यदि जल पर इसी प्रकार लेटे रहने का अभ्यास कर लें तो आराम से लेटा जा सकता है बड़ा आनन्द आयेगा। वृत्ति स्वतः ही एकाग्र हो जायेगी। जो व्यक्ति तैरना जानते हो उन्हें थोड़े ही जल में अभ्यास करना चाहिए।

समयः—आधे मिनट से ५ सैकण्ड बढ़ाते हुए दो मिनट तक।

लाभः—उदर विकारों के लिए लाभ-प्रद है।

उत्तान कूर्मासन

कुक्कुटासन बन्धस्थं कराभ्यां धृत कन्धरं।
पीठं कूर्मवदुत्थानं मेतदुत्तान कूर्मकम्॥

विधि:—पद्मासन लगाकर व अपने दोनों हाथों को कुक्कुटासन की ही तरह उरु भाग में रखे हुए पैरों के पंजे व पिंडलियों के बीच में हाथ निकालकर व ऊपर की ओर से लाकर अपने कन्धों पर हाथ लगा दें या सम्भव हो सके तो अपने दायें व बायें हाथ के पुर्जों को परस्पर गर्दन के पीछे से मिलाकर पकड़े रहें। इस आसन को उत्तान कूर्मासन कहते हैं। आजकल योगासन की श्रेणियों में इसको गर्भासन भी कहा जाता है क्योंकि इस आसन को करने वाले के शरीर की आकृति गर्भस्थ बालक जैसी बन जाती है।

यदि प्लाविनी कुम्भक लगा कर करें तो अत्यन्त ही सहज हो जायेगा।

दूसरा प्रकार:— इसी प्रकार मुक्त पद्मासन (साधारण पद्मासन जिसमें हाथों को पीछे की ओर से घुमाकर जंघा स्थल में

जमाए हुए पैरों के अँगूठे पकड़ने की आवश्यकता नहीं रहती) लगा कर सीधे लेट जाय व अपने दोनों पैरों के अँगूठों को दृढ़ता से पकड़ लें। (दाहिने हाथ से बांयें पैर के अँगूठे को, बांयें हाथ से दांयें पैर के अंगूठे को) कोहनियों को जमीन में जमाए रखें। शिर भाग को थोड़ा उलटाकर पीछे की ओर थोड़ा मोड़कर मस्तक जमीन में लगावें अतः पेट व छाती के भाग को ऊपर की ओर उठाए रक्खें। पैरों के अँगूठे सहज तनाव से ऊपर की ओर खिंचे रहें। यह भी मत्स्यासन प्रसारित है।

लाभः— इसका प्रभाव मल विसर्जिनी नाड़ियों पर पड़ता है। अतः शौच शुद्धि के लिए आंतों की पुष्टि के लिए व मलाशय शोधन के लिए उत्कृष्ट है।

समयः— आधे मिनट से आरम्भ करके शरीर के बलाबल को देखकर शनैः-शनैः अभ्यास बढ़ायें व कम-से-कम १० मिनट तक ले जायें। अवश्य लाभ होगा।

वकासन

विधिः—इस आसन में सरल भाव से बैठ कर अपने हाथों के पंजे जमीन पर जमालें। व अपने पैरों को उठाकर आगे की ओर पाद तल किए अपने कन्धों पर चढ़ालें। व हाथ के बल से सारे शरीर को ऊपर उठा दें। शरीर के उठने पर फैलाव के भाग और आगे बढ़ जायेगा। इसी का नाम वकासन है। आसन कक्षाओं में यह आसन और भी कई प्रकार से कराया जाता है किन्तु अधिक लाभप्रद नहीं है।

लाभ :—इसके करने से भुजदण्ड पुष्ट होते हैं। छाती का विकास एवं उत्साह बढ़ाता है। फेफड़े शुद्ध होते हैं। जठराग्नि बढ़ती है व सब प्रकार आरोग्यप्रद है।

पादांगुष्ठासन

इसका विपरीत क्रम:—इस आसन को उल्टा लेटकर भी किया जाता है। मुक्त पद्मासन लगाकर उल्टा लेट जाय, पैर के दोनों अंगूठे उसी प्रकार से दाहिने हाथ से बांये पैर का अंगूठा व बांये हाथ से दांये पैर के अंगूठे को पकड़कर ऊपर की ओर खींचें। पेट छाती व सिर को जितना ऊपर की ओर उठाया जा सके उठायें। सिर को पीछे की ओर इतना मोड़ें कि पीछे की ओर देखने का प्रयत्न करने पर दिखाई दे। यह इसी आसन का उल्टा लेटकर करने से विपरीत क्रम है अन्तर केवल इतना ही है कि जब साधक अपने पैरों के अंगूठों को पकड़कर ऊपर की ओर खींचेगा तो पीछे लगा हुआ मुक्त पद्मासन वाली पालथी भी कुछ ऊपर को अवश्य उठ जायेगी।

समय :—पूर्ववत् शनैः-शनैः बढ़ाएँ प्रथमाभ्यास में जल्दी न करें।

लाभ :—सभी पूर्वोक्त हैं। केवल इस विपरीत क्रममें भूख अधिक लगती है। क्योंकि इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

तोलांगुलासन

विधि :–इस आसन में मुक्त पद्मासन लगाकर सीधे लेट जांय, इसके बाद अपने दोनों हाथों की मुट्ठियां बांध कर अपने नितम्ब भाग में नीचे सीधे खड़ी मुट्ठियां लगालें व उन पर अपने सारे शरीरके वजन को तोल दें,सब वजन मुट्ठियों पर ही आ जाय इसी को तोलांगुलासन कहते हैं। इसके अभ्यास से हाथों की अंगुलियां सुदृढ़ होती हैं व त्रिकग्राही वात को हटाता है।

विधि:—पहिले पैरों के पंजों पर साधारण भाव से उत्कटासन की तरह बैठ जाइये। उसके बाद अपना एक पैर उठाकर दूसरे पैर के जंघा एवं जानु प्रदेश के मध्य भाग में (पटरर) रख लीजिए। व बैठने वाले पैर की ऐड़ी लिंगनाल के नीचे सीवनी पर लगाकर उसी पर सारे शरीर का वजन डालकर बैठ जांय। इसके बाद अपने दोनों हाथ कटि प्रदेश पर अर्द्धचन्द्राकार जमाकर छाती को आगे की ओर निकाल कर सामने दीखते हुए सीधे बैठ जाइए। इसी को पादांगुष्ठासन कहते हैं। प्रथमाभ्यास में मेरुदण्ड को सीधा रखने के लिए यदि किसी दीवार आदि का अवलम्ब लेना पड़े तो अवश्य ले लेना चाहिए। इसमें कोई हानि नहीं। इसके बाद कुछ दिन के अभ्यास से स्वतः ही होने लगेगा।

लाभ:—यह आसन ब्रह्मचारियों एवं विरक्तों के लिए बहुत ही प्रशंसनीय है। इसके करने से वीर्य विकार नष्ट हो जाते हैं। स्तम्भन बढ़ता है। उत्साह वृद्धि होती है व शरीर का संतुलन रहता है।

योगिराज श्री चन्द्रमोहन महाराज जी की

जम्मू-कश्मीर की यात्रा

[श्री रामदास गुप्ता बी. ए. (जम्मू-कश्मीर)]

दुर्गापुर (नगरोटा गुजरू)

विलावर तहसील रियासत जम्मू कश्मीर में धार ऊधमपुर सड़क पर स्थित है। ब्रह्मचारी हरिभक्त चैतन्य द्वारा आयोजित दस दिवसीय योग सम्मेलन यहाँ ८ मई ७० को आरम्भ होकर १८ मई ७० को सम्पन्न हुआ। अन्तिम दिन को एक बड़ा यज्ञ हुआ जिसमें लगभग १० हजार व्यक्तियों ने भाग लिया। कटरा ऊधमपुर रामनगर और जम्मू से पर्याप्त संख्या में श्रद्धालु भक्त पधारे थे। ब्रह्मचारी जी ने इन दिनों यज्ञ में योग सिद्धान्तों की लोगों के दिलों में गहरी छाप लगाई। पं राधाकृष्ण आगरा १२ मई को ही दुर्गापुर में आगये थे। आपके संगीत ने इस क्षेत्र में धूम मचा दी और चारों ओर से लोग आकर सम्मेलन की शोभा बढ़ाते चले गये। १५ मई ७० को हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध योगी योगयोगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज पधारे। श्री महाराज के साथ ब्रह्मचारी केशवदेव व कुमारी उमा शर्मा एवं उनके भाई शिवशंकर भी पधारे। भारतवर्ष में सभी योगप्रेमी श्री योगिराजजी के नामसे परिचित हैं। आप महाप्रभु श्री रामलालजी महाराज के परम प्रिय शिष्य हैं, जो सदाशिव का अवतार हो गुजरे हैं। आपने श्री सिद्ध गुफा सवाई, आगरा और ऋषिकेश में योग साधन आश्रम स्थापित किये थे, जो आज भी ठीक ढंग से चला है। योगिराज श्री महाराज भारत के कोने-कोने में योग प्रचार का कार्य कर रहे हैं। वे योग की सभी क्रियाओं को अच्छी प्रकार समझते और सिखलाते हैं पूज्य श्री सद गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने १९६७ में भी वसन्त ऋतु का उत्सव दुर्गापुर विलावरमें बड़े उत्साह से मनाया था ब्रह्मचारी हरिभक्तजी ने पं. नेहरू और अन्य नेताओं को भी योग की शिक्षा दी थी और जगह-जगह योग के केन्द्र आरम्भ किए हैं। आज कल भी आप अपने सद्गुरु देवजी के आशीर्वाद और निर्देश के सहारे दुर्गापुर और पत्नी टाप पर योगाश्रम कायम करने वाले हैं और दिन रात इस कार्य की सफलता में लगे रहते हैं।

२—बहिन श्री उमा शर्मा जी के मनोहर संगीत को जनता ने बहुत ही सराहा। आप श्री गुरुदेव जी के आश्रम की एक सुयोग्य प्रचारिका हैं।

शामली जिला मुजफ्फर नगर की रहने वाली हैं। आप जिन भजनों को सुनाकर जनता को मन्त्र मुग्ध करती हैं; प्रायः वे सभी आपके बनाये हुए हैं। उनके साथ में उनके छोटे भाई ने मृदंग वादन में अपना हस्त-लाघव दिखलाया। भाई शिवशंकर और बहिन उमा शर्मा दोनों ने अपने भक्ति-भाव पूर्ण गायन-वादन की धूम मचा बिलावर की पहाड़ी जनता पर अपनी गहरी छाप डाली। लोग पूज्य सद्गुरुदेव जी से बार-बार प्रार्थना करते हैं कि वह सर्व शक्तिमान प्रभु श्री राम-लाल जी के दरबार से उनकी आयु लम्बी करायें और इनको तन्दुरुस्ती दें, ताकि लोग हमेशा वार्षिक उत्सव पर उनके संगीत से लाभ उठाते रहें।

१२ मई ७० को पूज्य श्री सद् गुरुदेव जी महाराज बिलावर में श्री रामदास जी गुप्ता के यहाँ पधारे और बिल्वेश्वर महादेव हरिहर जी के प्राचीन मंदिर को देख कर बड़े ही प्रसन्न हुए। रात को भाषण व संगीत हुआ। १५ मई ७० से २० मई ७० तक बिलावर और दुर्गापुर क्षेत्र के निवासी हजारों नर-नारियों को आशीर्वाद देते हुए श्री महाराज जी ने कहा कि यह मनुष्य तन दुर्लभ है यदि मनुष्य जीवन धारण करके कोई व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन करता चला जाता है तो उसको यह मनुष्य शरीर परम कल्याण के लिए बार-बार प्राप्त होता रहता है। कदाचित् कोई मनुष्य मानवीय नियमों का पालन नहीं करता तो उसे यह मनुष्य शरीर कैसे प्राप्त हो सकता है। जिस भाग्यवान को सुदृढ़ मनुष्य शरीर प्राप्त हो जाय और प्रारब्ध की उज्वलता से कोई परिपूर्ण सद्गुरु मिल जाय और भगवान् पूरी तरह उसकी मदद करें फिर भी वह मनुष्य अगर संसार-सागर को पार करने का यत्न नहीं करता तो वह आत्म-हत्यारा ही है। इसलिए हर प्राणी को जिसने मनुष्य शरीर धारण किया है उसको अपने आत्म-कल्याण का प्रयत्न करते रहना चाहिए जिससे उसका मनुष्य जीवन सफल हो सके।

आगे श्री महाराज जी ने कहा कि मनुष्य गाढ़े कर्म करके उसका नतीजा इसी जीवनमें पा सकता है, कर्मों के दर्जों की बाबत आपने बतलाया कि मनुष्य जितने भी पुण्य के काम करते है वे सभी निष्काम भाव से करते रहना चाहिए। तपश्चर्या और साधनायें भी निष्काम होनी चाहिए। निष्काम भाव वाले पुण्य पुण्य के ही दाता हैं। इन्सान को मोक्ष दिलाकर ही छोड़ते हैं। इसलिए हर इन्सान को निष्काम कर्म-योग का अभ्यासी बनना चाहिए।

२१-५-७० से २८-५-७० तक श्री महाराज जी पत्नी टाप ठहरे। वहाँ पर ठंडी विशेष है क्योंकि वह ७ हजार फुट ऊँचाई पर है। पत्नी टाप पर रेस्ट हाउस का दृश्य देवदार के वृक्षों से परिवेष्टित अति सुन्दर व मनोरम है। रियासत जम्मू काश्मीर इस टूरिष्ट प्लाट को बढ़ावा देने के लिए काफी दौड़-धूप कर

रही है। वाटर सप्लाई का प्रबन्ध हो गया है यो टूरिस्ट हट्स बिलकुल तैयार है। बगल में जंगलात का रेस्ट हाउस पहले से ही चालू है। पूज्य श्री सद्गुरुदेवजी महाराज इस सुन्दर व मनोरम कुदरती नजारे वाली जगह को देखकर बहुत खुश हुए। एक किलो मीटर की दूरी पर ब्रह्मचारी श्री हरिभक्त जी यहाँ सिद्धयोग आश्रम अपने सद्गुरुदेव जी की संरक्षता में बनाना चाहते हैं। श्री महाराज जी ने आश्रम वाले स्थान को अत्यन्त पसन्द किया है। पत्नीटाप में भी लोगों ने श्री महाराज जी के प्रवचनों से लाभ उठाया। नित्य प्रति भजन-सत्संग व बहिन उमा शर्मा का शास्त्रीय संगीत का कार्यक्रम चलता था, और लोग जी भरकर लाभ उठाते थे, गर्मियों में यह टूरिस्ट सैन्टर योग साधना का बेहतरीन केन्द्र हो सकता है। जम्मू और ऊधमपुर की जनता रोजाना आ जा सकती है। बिजली के लग जाने से रौनक ज्यादा बढ़ सकती है अभी यहाँ जगह की कमी है। सस्ते किराये का एक कमरा वाले फ्लैट्स यहाँ बनें यह वक्त की माँग है। पत्नीटाप में इतवार के रोज यात्रियों का मेला लग जाता है। क्योंकि कैफेटेरिया के चालू होने से लोगों को काफी सहूलियत हो गई है। यहाँ सर्दियों में ६ फुट बर्फ पड़ती है जिसके नजारे देखने के लिए पब्लिक सर्दियों में भी आती-जाती है। कम आमदनी वाले लोग १२ रुपये रोज किराये पर वाले हट में कैसे ठहर सकते हैं। सिद्धयोग साधन सैन्टर खुलने से यहाँ काफी रौनक बढ़ जायगी।

विदेशी मुल्कों में आजकल योग केन्द्र बहुतायत से खुल रहे हैं। पर हम हिन्दुस्तानी अपनी परम्परागत योग शिक्षा से दूर होते चले जा रहे हैं। आज मानवता चौराहे पर खड़ी है। मानवता यहाँ दम तोड़ रही है। आज सुसाइटी में सोशल अखलाकी और रूहानी कमियों को बुरी तरह महसूस किया जा रहा है, "खुद जियो और दूसरों को भी जीने दो" का उसूल समाज से बिलकुल कम होता जा रहा है। इसलिए आज हर इन्सान को बगैर किसी मतभेद सिर्फ इन्सानियत के आधार पर सोचना होगा। आज भी हमने विदेशी विचारधारा को नहीं बदला है और देशमें हो रही दुर्घटनाओं से अभी भी देश ने सबक नहीं सीखा। न मालूम देश की नैया नफरत झूठ, मक्कर, बदमाशी और बिरादरी इज्म के समुद्र में कब तक हिचकोले खायेगी। हिन्दोस्तान ने हमेशा दुनिया को अमन सचाई, भाईचारा और मुहब्बत का सन्देश दिया है क्या हम अपने बुजुर्गों के इस नेक कदम पर चलेंगे क्योंकि इसी में मानव का कल्याण है।

मैंने अपनी योग-साधना में पूज्य सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज (श्री सिद्ध गुफा सवाई आगरा) वालों को सादा लिबास ऊँचे ख्यालात और शुद्धता में एक आदर्श महा योगी पाया है। इनकी बदौलत ही मैंने इतने थोड़े समय में ही

अपनी योग साधना ध्यानाभ्यास में काफी तरक्की की है। श्री सद्‌गुरुदेव शक्तिपात से साधक का उत्थान करके मोक्ष का अधिकारी बना देते हैं जिसका साधक प्रत्यक्ष में अनुभव करता है। श्री गुरुदेव जी के आश्रम की (जीवनतत्व) नामक ६ क्रियाओं को प्रति दिन श्री गुरुदेव जी के बतलाये क्रम से करने पर हर प्रकार के रोगी को निरोगता प्राप्त होती है। मन की एकाग्रता को बढ़ाने में भी यह बेहद लाभदायक है। श्री गुरुदेव जी का सिद्धगुफा आश्रम पूर्ण सिद्धस्थान है।

श्री नगर में सद्‌गुरु देव जी महाराज २८ मई से ३ जून तक ठहरे। पहलगाम कुकरनाग, मल्लनाग, अछाबल और मटन वगैरा की यात्रा की।

श्रीनगर में रोजाना सुबह-शाम, सरदार मक्खन सिंह और महावीर जी के मन्दिर अमीराकदल में सत्संग, संगीत और महाराज जी के प्रवचन होते थे। श्रीनगर की जनता, बहिन उषा शर्मा के संगीत और महाराज जी के प्रवचनों से बहुत प्रभावित हुई। ३ जून को शाम के ५॥ बजे चश्माशाही में Press Conference हुई। इसमें लगभग ३० सम्वाददाता शामिल हुए, २॥ घंटा खूब सवाल-जवाब होते रहे। महाराज जी ने सब सम्वाददाताओं को योग फिलासफी के अलग-अलग सिद्धान्तों पर बिला मजहबी मिल्लत काफी रोशनी डाली। तमाम अखबारों के सम्वाददाता महाराज जी के मनोहर ख्यालात से बहुत खुश हुए। आखिरमें सब सम्वाददाताओंको महाराजजी की तरफ से चौधरी रामदास गुप्ता ने चश्माशाही का ठंडे मीठे पानी और चाय वगैरा पिलाई, अपनी योग साधना और अलग-अलग सिद्धियों की प्राप्ति के बारे में सबको वाकिफ कराया। प्रेस कांफ्रेंस ४ बजे समाप्त हुई। M/s सीताराम श्रीचन्द्र अमीराकदल वालों ने श्रीनगर के प्रोग्राम को कामयाब बनाने में सबसे बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। श्री रामलाल शर्मा चीफ इंजीनियर मकेनिक रियासत जम्मू कश्मीर महाराज जी के बड़े प्रेमी शिष्य है, महाराज हमेशा उनके मकान पर ही ठहरते हैं ता० ४ मई ७० को महाराज जी १ बजे श्रीनगर से चले और १० बजे रात को पठान कोट स्टेशन पर पहुंचे। बनिहालसे श्री रामदास गुप्ता ने ओमप्रकाश मित्तल मैदा मिल सहारनपुर वालों को महाराज जी के प्रोग्राम के बारे में सूचित कर दिया था। ११ बजे रात को श्री रामदास गुप्ता ने महाराज जी को ट्रेन पर बैठा कर हार्दिक आशीर्वाद लिया।

१५-४-७० को पठान कोट रेलवे स्टेशन पर ही महाराज के आने पर श्री गुप्ता ने स्वागत किया था और उनकी तमाम यात्रा में वह साथ-साथ रहे।

श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश

का

वार्षिकोत्सव

सदा की भाँति इस वर्ष भी श्री योग-साधन आश्रम ऋषीकेशका वार्षिकोत्सव व गंगादशहरा योग महोत्सव ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी नवमी दशवीं वार शुक्र शनि रवि दिनांक १२,१३,१४ जून को बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ। इस उत्सव का शुभारम्भ सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा सबसे लगभग १० वर्ष पूर्व हुआ था। श्री गुरुदेव जी ही इस आश्रम के प्रधानाचार्य भी हैं।

यह आश्रम महाप्रभु श्री योगयोगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज की तपोभूमि है यहाँ अधिक समय तक श्री प्रभु जी ने निवास किया था। प्रभु जी की इसी लीला भूमि में यह उत्सव भी तीन दिन मनाया जाता है उत्सव के तीसरे दिन गंगादशहरा को भव्य एवं आकर्षक झाँकियों सहित नगर में विशाल जुलूस निकाला जाता है। २ दिन तक आश्रम में ही निश्चित कार्यक्रमानुसार योग विषयक प्रवचन होते हैं।

पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, जम्मू-काश्मीर, राजस्थान, मध्यप्रदेश, कलकत्ता, हिमालय प्रदेश आदि के भाई-बहिनों ने आकर इसमें भाग लिया।

स्वागत व आवास-व्यवस्था

आश्रम रेलवे रोड पर स्थित है। आश्रम तीन मंजिल का बना हुआ है इसमें कई कमरे हैं। फिर भी आश्रम में आवास-व्यवस्था कम होने के कारण साधकों को बाहर धर्मशालाओं में ठहराया जाता है। आश्रम के आसपास की धर्मशालाओं में पहिले से ही रिजर्वेशन करा ली जाती है आगत सज्जनों को ठहराया जाता है। आगत महानुभवों को ठहरने में कोई कष्ट न हो इसका विशेष ध्यान रक्खा जाता है।

श्री गुरुदेव की विलक्षण कृपा

उत्सव की तैयारियाँ महीनों पहिले से ही प्रारम्भ हो जाती हैं उत्सव के कार्यों में विशेष रूप से ऋषिकेश के भाई त्रिलोकीनाथ अग्रवाल, श्री गुरमुखदास चिरवानी, श्री पंडित श्रीपति जी व भाई श्री रंगीलाल जी अग्रवाल ने लगन व उत्साह से कार्य किया। उत्सव प्रारम्भ होने से एक दिन पूर्व ही भाई त्रिलोकीनाथ की ६ वर्ष का छोटा बच्चा देवेन्द्रकुमार अचानक बीमार हो गया। पेट दर्द से पीड़ित था। ऋषिकेश, देहरादून आदि के बड़े-बड़े डाक्टरों का

इलाज हो चुका था किन्तु लाभ नहीं हो रहा था। उत्सव के प्रारम्भ होने में एक दिन ही शेष रह गया था। सब के मन को बड़ा दुख था कि जिसने तन, मन, धन से उत्सव का कार्य किया है वही उत्सव से वंचित रहे। श्री गुरुदेव जी भी ६ ता० को आश्रम आ गये थे। सोचा यह था कि श्री गुरुदेवको कष्ट न दिया जाय और बच्चा ठीक हो जाय किन्तु ऐसा नहीं हुआ। डाक्टरों ने कहा इसे उदर-पीड़ा एव ज्वर (appendicites) है आपरेशन से ही ठीक होगा और कोई साधन नही है।

यह सुनकर त्रिलोकीनाथ व उन की धर्मपत्नी को घबड़ाहट हुई कि इतना छोटे बच्चे का आपरेशन कैसे होगा। फिर भी यह सब देहरादून जाने को तैयार हुए। लेकिन श्री गुरुदेव जी की कृपा का लाभ क्यों न लिया जाय यह सोचकर बच्चे को गुरुदेव जी के चरणों में लाकर रख दिया। श्री गुरुदेव जी ने डा० ललितमोहन शर्मा आगरे वालों को आदेश दिया कि बच्चे को देखो। उन्होंने देखा तो उन्हें भी यही अनुभव हुआ कि बच्चे को उदर-पीड़ा एवं ज्वर appendicites ही है यह मां-बाप की ज्यादा चिन्ता बढ़ी अन्त में श्री गुरुदेव जी को आधार मान कर उनको ही बच्चा सौंप दिया। कुछ देर बाद श्री गुरुदेव जी ने आज्ञा दी कि त्रिलोकीनाथ बच्चे को लेजाओ और घर ले जाकर सुला दो। बच्चा ले जाकर चारपाई पर लिटा दिया। बच्चे का चारपाई पर लेटना था कि बच्चा सो गया रात भर बच्चा आराम से सोता रहा।

जब सुबह जगा तो बच्चा पूर्ण स्वस्थ व प्रसन्न था। डाक्टर को दिखाया तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कहा कि इस बच्चे को स्वस्थ बनाने का कार्य मनुष्य का नहीं है यह तो कोई महान शक्ति है जिसके आशीर्वाद में बच्चा अब पूर्ण स्वस्थ है। उसके बाद स्वर्ग आश्रम के एक डाक्टर को दिखाया उसने बताया कि इसको पेट की खराबी से दर्द है कोई खतरे वाली नहीं। इस प्रकार श्री गुरुदेव जी की विलक्षण कृपा को सबने प्रत्यक्ष देखा।

श्री प्रभु जी का सिंहासन

सिंहासन को बहुत ही आकर्षक ढंग से सजाकर श्री महा प्रभुजी के दिव्य तेजोमय चित्र को प्रतिष्ठापित किया गया था। मंडप व चित्र की सजावट पूज्यनीय माता श्री द्रौपदीदेवी जी द्वारा बहुत ही सुन्दर एव सुरुचि पूर्ण ढंग से की गई। चित्र का भव्य दर्शन दर्शकों पर अपना अलौकिक प्रभाव डाल रहा था। आत्म-विभोर होकर अनेक गुरुभाई बहिन समाधिलीन तल्लीनता का अनुभव करते थे। श्री गुरुदेव जी के कर-कमलों द्वारा श्री महा प्रभु जी के सुसज्जित चित्र को उत्सव के प्रथम दिन पण्डाल में विराजमान किया।

व्याख्यान व प्रवचन

उत्सव के दोनों दिन तक श्री सद्गुरुदेव

योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज द्वारा योग की महत्ता पर सारगभित प्रवचन व उपदेश हुए और भी अन्य विद्वानों के प्रवचन हुए। श्री गुरुदेव जी के शब्द-शब्द में ऐसे उपदेशों व शिक्षाओं का समावेश था जिनका पालन करने से साधक अपने लक्ष तक पहुंच सकता है।

महिला-सत्संग

श्री माता द्रोपदी देवी जी द्वारा महिला-सत्संग का आयोजन किया गया था। यह सम्मेलन सायं काल ३ बजे से चलता था जिसमें संगीत व संकीर्तन के कार्य-क्रम बहुत ही रोचक थे।

संगीत व संकीर्तन

उपदेशों के साथ-साथ संगीत व संकीर्तन का भी अति सुन्दर कार्य-क्रम रहा था। कु० उमा शर्मा का शास्त्रीय संगीत एवं भजनोपदेश सुन्दर व रुचिकार थे संकीर्तन कार्य-क्रम में विशेष रूप से श्री ललितमोहन संकीर्तन मंडल आगरा, श्री सद्गुरु संकीर्तन मंडल कखवा व बालकृष्ण संकीर्तन मंडल शामली का संकीर्तन गायन आदि बहुत ही सुन्दर रहे। इन्होंने अपने मधुर संगीत एवं संकीर्तन द्वारा श्रोताओं को भाव-विभोर बनाया।

योगासनों का प्रदर्शन

उत्सव में आश्रम के ब्रह्मचारियों द्वारा आसनों का प्रदर्शन किया गया। ब्रह्मचारी आसनों की क्रिया करते चले जाते थे और श्री गुरुदेव जी अपने श्री मुख से उन आसनों का विवेचन करते चलते थे। किस रोग के निवारण के लिये कौन सा आसन करना चाहिए व कितने समय तक करना चाहिए, यह बात विशेष रूप से समझाई जाती थी।

भण्डारा

उत्सव के तीसरे दिन गंगादशहरा को भण्डारे का आयोजन था। दंडी महात्माओं व वेदपाठी ब्राह्मण व विद्यार्थियों को निमंत्रित किया गया था। दिन के १२ बजे श्री गुरुदेव जी के कर कमलों द्वारा दंडियों को भोजन वितरित किया गया। उसके पश्चात् ब्राह्मण भोजन कराया गया। तत्पश्चात अपने बाहर से आये गुरु भाई-बहिनों ने पावन-प्रसाद को ग्रहण किया। भोजन व्यवस्था का बहुत ही उत्तम प्रबन्ध किया गया था।

इस उत्सव का विशेष आकर्षण उत्सव के अन्तिम दिन गंगा दशहरा होता है। इस दिन योगधामेश्वर महाप्रभु जी की दिव्य झांकी नगर में जुलूस के रूप निकाली जाती है इसके अलावा अन्य देवताओं की आकर्षक झांकियां भी निकलती है।

किन्तु इस वर्ष यह सब व्यवस्था स्थगित कर देनी पड़ी। कारण उस दिन एक सम्भ्रान्त परिवार की एक बारात बाहर गई थी। जब वह बारात वापस लौट रही थी तो रास्ते में रुड़की के पास बस एक दूसरे बस से टकरा गई। फलस्वरूप कुल बारात

गम्भीर रूप से घायल हो गई। २ व्यक्ति घटना-स्थल पर ही मृत्युको प्राप्त हुए घायलों को अस्पताल पहुँचाया गया। कुछ की हालत विशेष चिन्ताजनक थी। इस शोक में सम्पूर्ण ऋषिकेश शहर का गंगा दशहरा उत्सव बंद कर दिया गया, स्थान-स्थान पर शोक-सभायें हुई दुर्घटनाके समाचार लेकर दिन के १२ बजे शहरके कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति गुरु-देव के पास आये और सभी दिवंगत आत्माओं को शान्ति प्रदान करने को आशीर्वाद देने की प्रार्थना की। इस घटना के विवरण से गुरुदेव जी को बहुत दुःख हुआ उन्होंने आदेश दिया कि जुलूस का कार्यक्रम स्थगित कर दिया जाय।

बड़े उत्साह के साथ जुलूस व झाँकियों की जो तैयारियाँ की गई थीं श्री गुरुदेव के आदेशानुसार वे सभी स्थगित कर दी गई और सामूहिक रूप से सभी ने घायलों के शीघ्र स्वस्थ हो जाने की और से दिवंगत आत्माओं की चिर-शान्ति के लिए भगवत प्रार्थना की गई।

श्री सद्गुरुदेव जी का कार्य-क्रम

श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश के वार्षिकोत्सव के उपरान्त श्री गुरुदेव जी ने लगभग २० दिन तक ऋषिकेश आश्रम मे निवास किया। इसी बीच में श्री गुरुदेव जी ने अवकाश प्राप्त एयर वाईस मार्शल श्री विश्वनाथ भारद्वाज (सम्प्रति जो तेल कम्पनी देहरादून में उच्च पदाधिकारी हैं) के विशेष आग्रह पर २ दिन के लिये योग प्रचारार्थ देहरादून गये, श्री भारद्वाज जी ने श्री गुरुदेव जी के देहरादून आगमन का प्रचार पहले से ही यथोचित रूप में कर दिया था। श्री भारद्वाज जी की कार द्वारा श्री गुरुदेव जी के देहरादून पहुंचते ही विशाल जन समुदाय ने उनका भव्य स्वागत किया। वहां दो दिन रुक कर गुरुदेव ने योग सम्बंधी महत्वपूर्ण प्रवचन किये। इन योग प्रवचनों को सुनकर सभी बहुत प्रभावित हुये तथा कार्य-क्रम बढ़ाने का आग्रह किया किन्तु श्री गुरुदेव ने इसे स्वीकार नहीं किया क्योंकि अगले कार्यक्रम निश्चित हो चुके थे जो इस प्रकार है :—

४-७-७०	भटियाना के लिये प्रस्थान
५-७-७० से १३-७-७० तक	भटियाना में स्वागत समारोह व योग-प्रचार।
	पता:— द्वारा श्री श्यामसिंह रावत मु. व पो. भटियाना, जिला मेरठ
१४-७-७०	विदाई व सवाई के लिए प्रस्थान

आश्रम पर गुरु पूर्णिमा का पर्व

सवाई आश्रम पर गत वर्षों की भांति इस वर्ष भी गुरु-पूजनोत्सव आषाढ़ शुक्ला १५ शनिवार दिनाङ्क १८ जुलाई ७० को मनाया जायेगा। श्री गुरुदेवजी १५ जुलाई तक आश्रम आ पहुंचेंगे। यह उत्सव यहां प्रति वर्ष साधक-शिष्यों द्वारा बड़ी श्रद्धा व सात्विकता से मनाया जाता है। यद्यपि यह पर्व केवल एक दिन का ही होता है फिर दूर-दूर से सहस्रों की संख्या में साधक एकत्रित होते और श्री गुरुदेवजी का पूजन करके अपने को धन्य समझते हैं। शिष्य के लिये गुरु-पूजा का यह दिन महान मंगलमय पर्व ही होता है। इसीलिए श्रद्धालु भक्तों की भीड़ इस दिन अत्यधिक रहती है।

श्री गुरुदेव जी गुरु पूर्णिमा के पश्चात् लगभग १० दिन तक श्री सिद्ध गुफा पर निवास करेंगे तत्पश्चात् २ महीने के लिये एकान्तवास को प्रस्थान करेंगे। एकान्तवास के समय में श्री गुरुदेव जी से साधकों और प्रेमियों का पत्र-व्यवहार बन्द रहेगा। इसके बीच में जो भी पत्र-व्यवहार करना चाहें वे 'कार्यालय श्री सिद्ध गुफा सवांई (आगरा)' के पते से ही करने का कष्ट करें।

नोट:— उपर्युक्त कार्य-क्रम निश्चित ही है किन्तु किसी विशेष कारणवश श्री गुरुदेव जी की आज्ञानुसार इसमें परिवर्तन भी किया जा सकता है।

— व्यवस्थापक श्री सिद्ध गुफा
योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई

Sidha-yog

Regd. NO. L. 1002

ध्यान के लिए एकान्त का महत्व।

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक:

योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

ध्यान में सफलता प्राप्त करने के लिए जो आधार भूत आवश्यकताएं हैं, उनमें एकान्त का महत्वपूर्ण स्थान है। मानस-जगत् में विभिन्न रंग तथा विभिन्न रूप वाले विचारों का निरंतर सम्मिश्रण होता रहता है। कुछ उदात्त एवं महान विचार मन को पूर्णता प्रदान करके उसे बलिष्ट बनाने की प्रवृत्ति रखते हैं तथा कुछ तुच्छ विचार मन की शक्ति को क्षीण करते हैं। मानसिक जगत के इन विभिन्न विचारों के प्रति मन अनुरक्त या विरक्त होता रहता है। अपने ध्येय आदर्श पर आरूढ़ रहने के लिए इन रंग-बिरंगे विचारों के प्रभाव से अपने को अछूता रखना आवश्यक है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए एकान्त परम उपयोगी तथा अमित संभावनाओं से पूर्ण है। एकान्त सेवन मानसिक शक्ति का सदुपयोग या किफायतसारी है।

—मेहेरबाबा

मुद्रक-देवीप्रसाद शर्मा 'दिव्य' कर्मयोग प्रिंटिंग प्रेस, बसई कलां, ताजगंज-आगरा-२